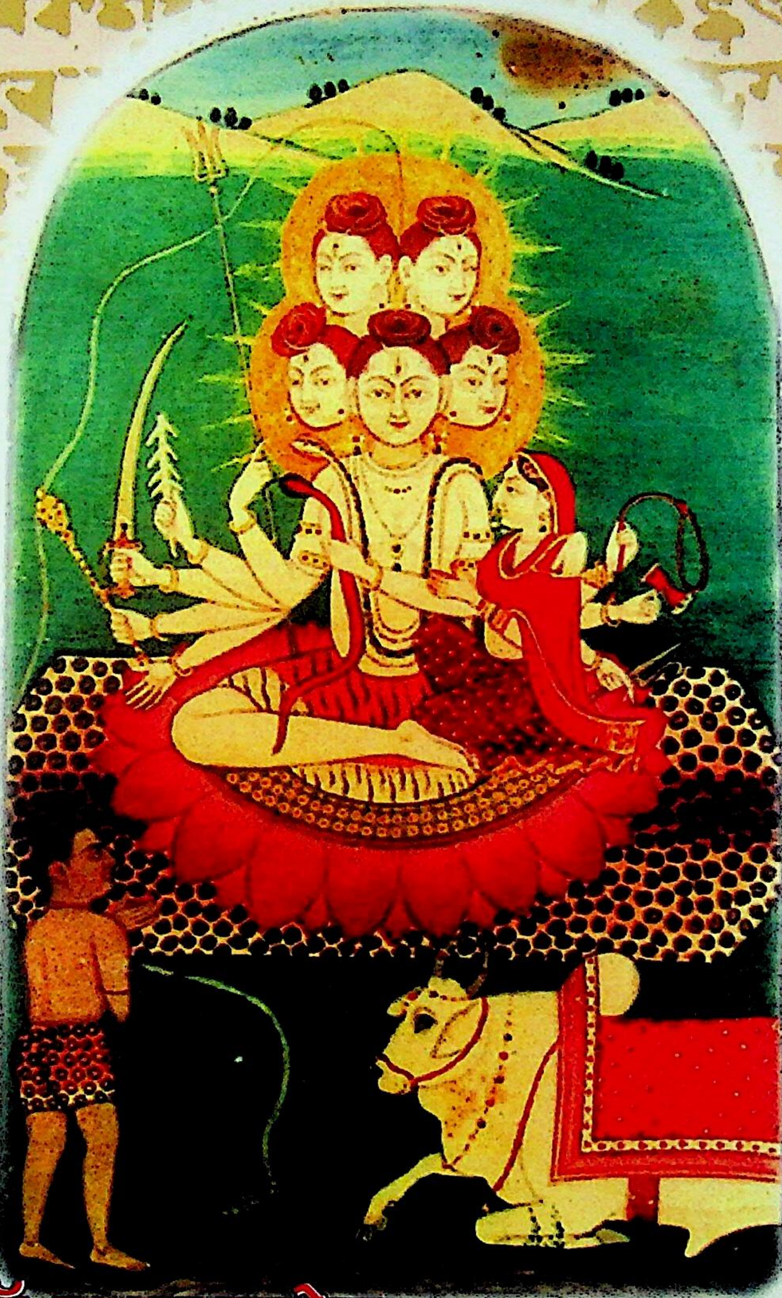
वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्रम्



डॉ० प्रकाश पाण्डेय

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद

वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्रम्

सम्पादकः

डॉ. प्रकाशपाण्डेयः



गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्

चन्द्रशेखर-आज़ाद-उद्यानम्

प्रयागः

वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्रम्

सम्पादकः
डॉ. प्रकाशपाण्डेयः



गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
चन्द्रशेखर-आज़ाद-उद्यानम्
प्रयागः

राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्
(केन्द्रीयशिक्षामन्त्रालयस्याङ्गभूतम्)
देहली

गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ-ग्रन्थमाला

प्रधानसम्पादकः

डॉ. गयाचरण त्रिपाठी

पञ्चाशत्तमं प्रसूनम्

वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्रम्

सम्पादकः

डॉ. प्रकाशपाण्डेयः



गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
प्रयागः

प्रकाशक :
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी, डी०लिट्०
प्राचार्य
गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
चन्द्रशेखर आजाद पार्क
इलाहाबाद - २

मूल्यम् :

978-93-83135-88-2

अक्षर सञ्योजकः मुद्रकश्च
प्रतिभा प्रकाशनम्
(प्राच्यविद्यायाः प्रकाशकः पुस्तक विक्रेता च)
29/5, शक्तिनगरम्
देहल्यां - 110007

RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
(Under the auspices of the Ministry of H.R.D.)
New Delhi

Ganganatha Jha Kendriya Sanskrit Vidyapitha
TEXT SERIES

Chief Editor
Prof. G.C. Tripathi
Principal

Vol. No. 50

VṚDDHASVACCHANDASAṀGRAH TANTRAM

Edited by
Dr. Prakash Pandey
Astt. Director,
Rashitrya Sanskrit Sansthan, New Delhi



Ganganatha Jha Kendriya Sanskrit Vidyapitha
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad-211 002



स्वच्छन्दभैरवः

सप्तदशशतके वैक्रमे संवत्सरे निर्मितं चित्रम्

ग्रन्थस्य शारदाक्षरैर्लिखितं पत्रम्

[illegible]

पुरोवाक्

काश्मीर की अब लुप्तप्राय (अथवा कहें, संभवतः पूर्णतया विलुप्त) कौल उपासना पद्धति के इस अतीव दुर्लभ एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "वृद्धस्वच्छन्दसंग्रह" को प्रथम बार प्रकाश में लाते हुए हमें आन्तरिक प्रसन्नता है। शारदा लिपि के उत्कृष्ट जानकार डॉ. प्रकाश पाण्डेय भारत के शिक्षा मन्त्रालय के अनुदेश पर वर्ष 1986 एवं 1987 में श्रीनगर वि.वि. के इक़बाल पुस्तकालय में संरक्षित कुछ अतीव दुर्लभ संस्कृत पाण्डुलिपियों की माइक्रोफिल्मिग् करने के लिये विद्यापीठ द्वारा प्रेषित किये गये थे जहाँ उन्होंने बिना किसी बाह्य सहायता के लगभग 300 ग्रन्थों की माइक्रोफिल्में बनाईं और स्वतः उनको रासायनिक विधि द्वारा परिषिद्ध (develop) भी किया। उन्हीं दुर्लभ ग्रन्थों के रत्नकोष में उन्हें इस "वृद्धस्वच्छन्दसंग्रह" की दो प्राचीन मातृकाएँ भी प्राप्त हुईं जिनके आधार पर उन्होंने इस ग्रन्थ रत्न का कुशल एवं वैदुष्यपूर्ण सम्पादन किया है।

इसके पूर्व भी डॉ. प्रकाश पाण्डेय तान्त्रिक साहित्य से संबद्ध तीन अन्य ग्रन्थ (कालीपूजा पद्धति, मुद्राविमर्श, विन्ध्याचल क्षेत्र का धार्मिक-सामाजिक अध्ययन) प्रकाशित करके विद्वज्जगत् में सम्मान अर्जित कर चुके हैं। माँ विन्ध्यवासिनी के अर्चक-कुल में उत्पन्न होने एवं तान्त्रिक उपासना पद्धति में विधिवत् दीक्षित होने के कारण वे ऐसे गुह्य एवं जटिल ग्रन्थों को सम्पादित करने एवं उन पर व्याख्या लिखने के लिये पूर्णतः अधिकारी भी हैं। वैदिक साहित्य, सर्वविधदर्शन, काव्यशास्त्र एवं इतिहास में भी निर्बाध गति रखने एवं आलोचनात्मक दृष्टि से मण्डित होने के साथ-साथ मौलिक विचारों के भी धनी होने के कारण उनके सभी ग्रन्थ उत्कृष्ट सम्पादन कार्य के उत्तम निदर्शन है।

इस ग्रन्थ की विषयवस्तु अत्यन्त गूढ़ तथा गोप्य है। अदीक्षित जिज्ञासुओं के लिये उसका समझना सरल नहीं है, किन्तु डॉ. पाण्डेय ने ग्रन्थ की भूमिका में उसका सार-संक्षेप अपेक्षाकृत सरल रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है, फिर भी अत्यन्त गोप्य विषयों के अति-विशदीकरण से वे विरत रहे हैं। ऐसे विषयों को गुरु कृपैकगम्य मान कर उन्होंने अधिकारियों के लिये छोड़ दिया है।

सम्पूर्ण तान्त्रिक साहित्य 'आगम'-परम्परा पर आधारित है। गुरूमुख से शिष्यों की लम्बी परम्परा क्रमशः ऐसा ज्ञान प्राप्त करती चली जाती है, अतः ग्रन्थ की विषय-वस्तु के उद्भव के काल का आकलन असंभव है; फिर भी सम्पाद्यमान ग्रन्थ में प्राप्य अन्यान्य ग्रन्थों

के उल्लेख या उद्धरणों से इस ग्रन्थ की रचना का जो काल-निर्णय उन्होंने किया है, वह विद्वानों को मान्य होगा, ऐसी आशा है।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित रूप में देखने की मेरे मन में वर्षों से अभिलाषा थी, ईश्वर कृपया वह आज पूरी हो रही है, यह मेरे लिये परम सन्तोष का कारण है। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ एवं डॉ. प्रकाश पाण्डेय का परिश्रम विद्वानों में समादृत होगा और वे यश के भाजन होंगे। डॉ. पाण्डेय जैसे प्रखर वैदुषीमण्डित अन्तेवासी से संबद्ध होकर मैं स्वयं विशिष्ट गौरव का अनुभव करता रहता हूँ, इत्यलम्।

गङ्गानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
चन्द्रशेखर आजाद पार्क,
30 दिसम्बर, 2001 ई.

विदुषामाश्रवः
— गयाचरण त्रिपाठी

विषयानुक्रमः

भूमिका

भूमिका

"*वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्र*" संभवतः लुप्त माना जाने वाला किन्तु कौलमार्गीय उपासना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण विवरण समुपस्थापित करने वाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के २ हस्तलेख कश्मीर से मिले थे।[1] वे माइक्रोफिल्म के रूप में गंगानाथ झा विद्यापीठ, इलाहाबाद में सुरक्षित हैं। मातृकाएँ प्राचीन शारदालिपि में लिपिबद्ध हैं।

वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्र स्वरूपतः ३५ पटलों में विभक्त है। किंतु दोनो ही हस्तलेखों में ३१ और ३२ वें पटल लुप्त हैं, जैसा कि प्रायः सभी कश्मीरीय हस्तलेखों की विशेषता है कि जो भाग एक हस्तलेख में अनुपलब्ध होगा वही भाग अन्य प्रतिलिपियों में भी नहीं मिलता। ग्रंथ "पातालपिङ्गलामतम्" नामक विशाल-संग्रह का एक भाग है।[2] प्राप्त ग्रंथ में कुल १५५३ श्लोक हैं। यद्यपि दोनों हस्तलेखों में पटलच्युति समान है, तथापि दोनों भिन्न मातृकाओं की प्रतिलिपियाँ प्रतीत होती है, क्योंकि-

(क) दोनो मातृकाओं में पर्याप्त पाठभेद है।

(ख) मा.सं. १५३१ (आगे 'ख' नाम्नी) में कुछ पंक्तियाँ अधिक पठित हैं।[3]

मातृका परिचय

प्रथम मातृका (मा. सं. १५१४ 'क' नाम्नी) अशुद्ध, पूर्ण एवं स्पष्टाक्षरा है। इसके प्रतिलिपिकर्त्ता लक्ष्मणभट्ट हैं। मातृका चैत्र कृष्ण पंचमी संवत् ५० (?) को पूर्ण हुई थी—

सं. ५० चैत्रवतिपञ्चम्यां परे भट्टलक्ष्मण लिख्य शुभायास्त।।

(पुष्पिका)

द्वितीय मातृका (ख) प्राचीन जीर्ण एवं अंतिमपटल के ३१ श्लोक तक ही प्राप्त है। अतः ग्रन्थान्तविवरण के अभाव में निश्चित लिपिकाल एवं लेखक अज्ञात रह गए।

---

१. ये हस्तलेख १९८७-८८ में श्रीनगर विश्वविद्यालय में एशियन स्टडीज् सेंटर में मातृका सं. १५१४, १५३१ के रूप में सुरक्षित हैं।

२. द्वितीय पटल की पुष्पिका- "इति श्री महाकौलागमे पातालपिंगले षट्त्रिंशत्साहस्त्रीसंहितायां द्वादशसहस्रखण्डविनिर्गते श्रीकामरूपावतारे सर्वशास्त्रविनिर्णये वृद्धस्वच्छन्दमहाकौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे द्वितीयः पटलः।

३. यथा १/३२ ख, ३३क, २/५०, ८४ ख- ८५, ३/७३, ५/४७, १२/३क, १३/४ख-८२, १५/३३ख, १९/१४-१५, २६/८ख।

ग्रन्थ की भाषा

ग्रंथ की भाषा संस्कृत है किन्तु 'स्वच्छन्दतन्त्र' की भाँति शुद्ध संस्कृत नहीं है। इसमें अपाणिनीय प्रयोग पर्याप्त हैं। यथा— ब्रह्मविष्ण्वीशरुद्राभ्यां कर्तार (१/१९), जगाम्बिकां (२/१५ आदि), यस्यायं सचराचरम् (२/८२), अहोऽपि (३/१७), नासप्तितमं (३/६६), भवते भवति (८/३१), परेब्रह्मे (८/५५) आदि। भाषागत स्वातंत्र्य अनेक तंत्रों, पुराणों, एवं उपपुराणों की विशेषता रही है।

ग्रन्थगत विषय

पटलानुक्रम से ग्रंथ की सामग्री का संक्षेप में इस प्रकार संकलन किया जा सकता है।

प्रथम पटल

प्रथमपटल का आरंभ मंगलाचरण से हुआ है। यह श्लोक कश्मीर शैवदर्शन के अन्य ग्रंथों में भी प्राप्त होता है। श्लोक गुरुरूप शिव को समर्पित है एवं कुछ शब्द दोनों मातृकाओं में खंडित हैं। मंगलाचरण के ३ श्लोकों के पश्चात् शास्त्र जिज्ञासा का उपक्रम पारंपरिक रूप से विस्तृत भूमिका के रूप में किया गया है। ''कैलास'' हिमाच्छादित शिखर के रूप में वर्णित न होकर मणिरत्नविभूषित, सर्वौषधिसमाकीर्ण, नानाधातुविचित्रित, नानाद्रुमलताकीर्ण, पुष्पोपशोभित, पक्षिषट्पद के गुंजन से निनादित, नानालंकारभूषित, दिव्यसुगंधित वायु से रम्य महापीठ के रूप में उपस्थापित है। इस महापीठ पर चण्ड नन्दिन् आदि गणों सहित ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों द्वारा स्तूयमान, सिद्धगंधर्व सुरासुर ऋषिगणों द्वारा नमस्कृत,[४] महाविनोदाभिरत विगतामय भैरव-भैरवी सुखासीन थे।

भैरवरूपशिव आसवोन्मत्त उदितावस्था में शोभित थे।[५] भैरव की प्रसन्नमुद्रा देख परमाकला आद्याशक्ति भैरवी शंकर को साष्टांग प्रणाम पुरस्सर चरणों को पकड़ कर शास्त्र जिज्ञासा का समारंभ करती हैं। इस प्रणिपात एवं चरण पकड़कर प्रश्न करने का हेतु ग्रंथकार ने सांसारिक जनों के घोर दुःखमय जीवन के प्रति जगदंबा की करुणा बताया है।

घोरं संसारमतुलं दृष्ट्वा तु घटयन्त्रवत्।
भ्राम्यमाणं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
जन्तोरुद्धरणार्थाय कृपया जगदम्बिका।।

(१/१६ उ., १७)

अपनी जिज्ञासा में भैरवी ने शिव द्वारा पूर्वकथित दिव्य ज्ञान का अनुवाद करते हुए बताया कि मैंने आपकी कृपा से चतुवर्गफलप्रद चतुष्पीठमहातंत्र का ज्ञान प्राप्त किया जो सप्तस्रोतोद्भव

४. १-६.
५. ७-११.

है।[६] इनके अतिरिक्त विद्यापीठ, मुद्रापीठ, महामंडल पीठ, योगपीठ एवं तंत्रपीठ का विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया।[७] इनके साथ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चतुराम्नाय, शाक्त, शाम्भव, सौर, वैष्णव, बौद्ध एवं आर्हत इन षट् सम्प्रदायों[८] कुल, कौल, महाकौलादि तंत्रों एवं अनेक प्रकार के कीलित, अकीलित, सगर्भ-निर्गर्भ, सबीज-निर्बीज, अंतर्गर्भ मंत्र प्रकारों का ज्ञान प्राचीन काल में प्राप्त किया।[९] इसी प्रकार वैदिक, भूततंत्र, गारुड, शाक्त, शांभवादि एवं श्रीमतादि क्रमों का उपदेश ग्रहण किया।[१०]

किन्तु कलिकाल में मनुष्य अल्पवीर्यपराक्रम, अल्पायु एवं अल्पवित्त हो चुका है, जरादारिद्र्य से पीडित है, शास्त्रार्थ का अल्प संग्रह करने में समर्थ है, अतः सर्वसौभाग्यजनन, सर्वाधिकारफलद, अलक्ष्मितमनाशन उपाय का कथन करें-

आद्यं हृदयसर्वस्वं योगिनीनां महोदयम्।
दारिद्र्यदुःखशमनं - - - - - - - - - - - ।।
सर्वसौभाग्यजननं सर्वकामविभूतिदम्।
सर्वाधिकारफलदमलक्ष्मितमनाशनम्।।
अदृष्टविग्रहायातं वक्त्राद्वक्त्रक्रमागतम्।
हृदयं सर्वदेवीनां योगिनीनां महोदयम्।।
कर्णात्कर्णोपदेशं वै गुर्वाम्नायोपबृंहितम्।
सारं निर्मथ्य योगेन सप्तस्त्रोतोद्भवं परम्।
कोटि-कोटि प्रविस्तीर्णं स्वच्छन्दं ज्ञान-सागरम्।।
स्फुरत्कालानलप्रख्यं कुल कौलक्रमार्णवम्।
खेचराद्यणिमाद्यष्टौ लीलया सर्वसिद्धिदम्।।
कथय स्वप्रसादेन स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।

(१/३९-४४)

इसी प्रकार जिज्ञासा को दृढतापूर्वक उपस्थापित करती हुई आद्याशक्ति ने इसका उपसंहार किया-

---

६. १२-१४.
७. १/१९-२१.
८. १/२२-२४.
९. १/२५-२६.
१०. २७-३०.

येन विज्ञातमात्रेण मन्दपुण्योऽपि लीलया।
स्वपिण्डे सिद्ध्यतेत्याशु तत्पदं कौलिकान्तिमम्॥
कथय स्वप्रसादेन भव भृङ्गीशवाहन।

(१/५१.५२)

जिज्ञासा की विस्तृत भूमिका के पश्चात् शिव अनुपदिष्ट सप्तस्रोतोद्भव - "व्याधिभक्ष वृद्धस्वच्छन्दभैरवतन्त्र" के उपदेश का समारम्भ करते हैं -

सारं निर्मथ्य योगेन दध्नो घृतमिवोद्धृतम्।
अल्पशास्त्रार्थबहुलं प्रयोगानेकसङ्कुलम्॥
सर्वकामार्थफलदं गहनं ज्ञानसागरम्।
अदृष्टविग्रहायातं पारम्पर्यक्रमोदयम्॥
सहस्त्रं सम्प्रवक्ष्यामि कामरूपावतारकम्।
न मयाकस्यचित्ख्यातं सर्वस्वमिवगोपितम्।
व्याधिभक्षेति विख्यातं वृद्धस्वच्छन्दभैरवम्॥

(१/६१-६४)

इस तंत्र को ध्यान-धारणा-जप-होम-क्लेशायास-निर्मुक्त, तर्कवाग्जाल-रहित, कालसीमामुक्त, सुसिद्ध, सर्वसिद्धिप्रद बताया गया है (१/६८-७०)। स्वयं तंत्रकार इस ग्रंथ को "भैरवडामर" की संज्ञा देते हैं-

प्रवक्ष्यामि यथातथ्यमयं भैरवडामरम्॥१/७२ पू.

शिव का कथन है कि वृद्धस्वच्छन्दनाथ ने प्रत्येक युग में अवतरित होकर लोकहित में मंत्रोपदेश किया है।

द्वितीय पटल

द्वितीय पटल में वृद्धनाथ के द्विविध अघोरमंत्र का विधान एवं चर्या का व्यवस्थित रूप से वर्णन किया गया है।[११] एतदर्थ प्रथमतः "याग स्थान" जिसमें एकलिंग, श्मशान, पर्वतशिखर, नदीसंगम, भूगृह, स्वगृह, द्विजगृह अटवी, निर्जनस्थल अथवा यथा रूचि आदि विकल्प बताए गए हैं।[१२] किसी एक योग स्थान को विधिवत् सुशोभित करने तथा भूमि संस्कार की अघोरक्रमानुकूलविधि बताई गई है। जिसमें सुरा, स्वयम्भूकुसुम आदि का प्रयोग विहित है।

अनन्तर मदिरानन्दचैतन्य साधक के लिए यथोक्त वस्त्रधारण कर मातृकान्यास, मातृकार्चन, खेचरीमुद्रा साधन करके अघोर मंत्र के जप का विधान है।[१३] इस साधना के लिए

११. १/३१-३३.
१२. १/७३-७८.
१३. २१४-५.

३८ अक्षरों के अघोर मंत्र एवं अघोरशिव के ध्यान का उल्लेख है।[१४] इस प्रकरण में २ प्रकार के अघोर मंत्रों का विधान है। अतः अघोरशिव के दो प्रकार के ध्यान भी विहित हैं।[१५]

अंत में इस मंत्र के साधना की विस्तृत फलश्रुति एवं वृद्धकाली के स्वरूप का वर्णन, उनकी पूजा का उपदेश है।[१६]

तृतीय पटल

पूर्वोक्त अघोर मंत्र की राजराजेश्वर संज्ञा है।[१७] अतः वृद्धकाली मंत्र को राजराजेश्वरी मंत्र की संज्ञा देते हुए तृतीय पटल में "सप्तदशाक्षरी विद्या" का उपदेश एवं उसकी फलश्रुति वर्णन में ८५ श्लोक लिखे गए हैं। तदनंतर इस विद्या का मंत्र भेद एवं उसकी फलश्रुति वर्णित है।[१८]

चतुर्थ पटल

चतुर्थ पटल में वृद्धस्वच्छन्द नाथ एवं वृद्धकाली के सूक्ष्म एवं स्थूल स्वरूपों की जिज्ञासा तथा समाधान है।

सूक्ष्म स्वरूप के वर्णन में शिव के चिदाकारत्व का सुंदर वर्णन है एवं इनकी स्थिति षट्-चक्रों के मध्य चित्कलावलिमंडित बताया गया है।

भावगम्यं गुणाधारं चित्कलावलिमण्डितम्।
चिद्रूपं तु चिदाकारं देवं चिद्व्योमभास्करम्॥

(४/१४-१५)

स्थूल रूप में महाप्रेतासन स्थित प्रेतपद्मोपविष्ट महाभैरव विग्रह बताए गए हैं। स्थूल रूप के वर्णन में भी तंत्र का वचन दार्शनिक है-

अकुलात्कुलरूपं वै विस्फुलिङ्गमिवोर्जितम्।
तत्रोच्छलितमूर्तित्वाद्देवं भैरवभैरवम्॥
वृद्धनाथेति विख्यातमघोरं घोरनाशनम्।

(४/२८-२९)

१४. रक्तश्वेताम्बरो वापि कृष्णपीताम्बरोऽपि वा। २/१४ क।

१५. २/६-३२.

१६. २/३३-३८.

१७. २/३८-७७.

१८. २/७८-९०.

इस स्वरूप के अतिरिक्त आनन्द, परानन्द, नित्यानन्द, निरञ्जन, सर्वानन्द, अज, शान्तानन्द रूप में ७ वाक्यों, तन्त्राभिजन के सप्त स्रोतों एवं उनके आनन की मूर्तियों का नामकरण किया गया है।[१९] स्तरभेद से इन आननों अथवा स्रोतों को अनेक संज्ञाएँ प्राप्त हैं। इन संज्ञाओं को एक दृष्टि में अधोनिर्दिष्ट क्रम से देखा जा सकता है। यद्यपि इस प्रकरण के कुछ श्लोक लुप्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि श्लोक ३६ एवं ३७ में प्रकरण भेद है। आनन्दमतोदित (४/३२-६२) अभिधान इस प्रकार हैं–

वक्त्र	१	२	३	४	५
पूर्व	आनन्द	ईश्वरः	तत्पुरुष	आनन्द	ऋग्वेद
पश्चिम	निरञ्जना	ब्रह्म	सद्योजात	अमलानन्द	यजुर्वेद
उत्तर	परानन्द	विष्णु	वासुदेव	मायानन्द	सामवेद
दक्षिण	नित्यानन्द	रुद्र	अघोर	तेजानन्द	अथर्व
ऊर्ध्व	अज	सद्यः शक्ति	-	ऊर्ध्वानन्द	शशि
ऊर्ध्वोर्ध्व	शान्तानन्द	-	-	आकाशानन्द	-
अधः	सर्वानन्द	सदाशिव	-	शक्ति	सूर्य

६	७	८	९
शब्द	जालन्धर	सौर	पूर्वाम्नाय
स्पर्श	पूर्णगिरि	आहित	पश्चिमाम्नाय
रस	ओडयान	वैष्णव	उत्तराम्नाय
रूप	कामरूप	बौद्ध, शाम्भव	दक्षिणाम्नाय
विष्णु	क्रोध	वृद्धस्वच्छन्दभैरव	शिव दिव्यौघ
गन्ध	कामानन्द	शाक्त	शक्ति

१०	११	१२
कौलार्थ	मुद्रापीठ	पिण्डस्थ
श्रीमतार्थ	मण्डलपीठ	पादस्थ
कुलार्थ	विद्यापीठ	रूपातीत
तन्त्रार्थ	मन्त्रपीठ	आपःस्थ
निरीह निरास्तिक	तत्त्वपीठ	अजानन्द
क्रमार्थ	योगपीठ	-
यामलार्थ	शक्तिपीठ	संहार

---

१९. २/२.

पञ्चमपटल

पटलारंभ कौलक्रमानुमतार्चन जिज्ञासा से है। अनंतर वृद्धकालीयुत वृद्धनाथ के कौलाक्रमार्चन का विधान वर्णित है। इन मूर्तियों का प्रतिमा में अर्चन निषद्ध है एवं स्वदेहस्थ भाव में अर्चन सर्वाधिक प्रशस्त है-

नदीतीरे तले पात्रे नाचयेत् स्थण्डिले जले।
मृदे कलशे नाथ नार्चयेत् प्रतिमादिभिः॥
पटस्थं सिद्धिदं प्रोक्तं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥

(५/११-१२क.)

पर, अपर, परापर तीन क्रम अर्चन के होते हैं—

१. स्वकुलोक्त परसंज्ञक है बाह्याभ्यंतर भेद से परार्चन का दो प्रकार होता है।
२. सर्वतत्त्वालयोद्भूत परमव्योम अपर संज्ञक है। जो उपनिषद् के दहराकाश के समान भावनात्मक है।
३. अखण्डमण्डलाकार उदयास्तवर्जित तत्त्व परापर संज्ञक है। इनका स्वरूपानुकूलक्रमार्चन होता है। यह विशुद्ध चित्कला है।

इन संज्ञाओं के पश्चात् श्रीकौलार्चन हेतु समुचित पद के निर्माण का वाममार्गीय एवं गोपनीय विधि वर्णित है।[20] इस रक्तवर्ण पट पर चतुरस्र या त्रिकोण उसके मध्य में द्विदलपद्म को केसरयुक्त बनाकर प्रथम त्रिकोण के बाद षट्कोण एवं चतुरस्र में ३२ दल का इंदु (वृत्त) मंडल निर्मित करना चाहिए। तत्पश्चात् द्वादश दलपद्म एवं प्रत्येक मण्डल के मध्य अष्टदल पद्म का निर्माण करना चाहिए।

इसी श्रीचक्र में वृद्धनाथ के आवरण देवताओं का अर्चन विहित है। यथा-कर्णिका में-सुचेतन, सर्वलोकक्षयकर, सर्वकारणकारण, सर्वाधिकार, निराधार, सर्वभूतान्तरोदित पञ्चवक्त्र विशालाक्ष, भैरव, फलमालाधर, सौम्य, चित्कलावलिमेखल, स्वतन्त्र, चित्पद्मशयनारूढ, भोगलिङ्गानन्तरारूढ लिंगमूर्ति की पूजा विहित है।[21]

कर्णिका के बाह्य प्रदेश में द्विदलपद्म शक्तितत्त्व की अर्चना उसके बाहर द्वादशदल मध्यस्थ षट्कोण में खेचरी, भूचरी, गोचरी, दिक्चरी, शाकिनी, डाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी, क्षपिका, द्राव्या एवं भासुरिका, महादेवियों की पूजा होती है। ये सभी द्वादशार के मध्यारों में स्थित हैं। तृतीय द्वात्रिंशदल में- १. गणेश-दक्षकर्णा; २. बटुक-वल्लभाम्बिका; ३. श्रीकण्ठ-नित्या; ४. सर्वसन्थान - महालक्ष्मी; ५. इनके पूर्व भाग में (लोकपाल ८)

२०. ८६-१०४.
२१. ४/३०-६५.

दिक्पाल (१०) तथा क्षेत्रपालों (१६) का; ६. दक्षिण में गुरु पंक्ति की पूजा भार्याओं के सहित; ७. उत्तर में पूर्वोक्त चर्यावतारों का सशक्ति पूजन विहित है।

अष्टदल में ओड्यानादि चतुष्पीठ एवं सिद्धचामुण्डादि देवी चतुष्टयी की पूजा विहित है। चक्रार्चन की विधि के साथ पटल समापन हुआ है।

षष्ठ पटल

षष्ठपटल में पञ्चवक्त्रशिव के सूक्ष्म स्थूल स्वरूप की जिज्ञासा एवं समाधान वर्णित है। शिव का चिद्रूप भोगेश्वर के रूप में स्मरण किया गया है। इनकी संज्ञा स्वच्छन्द डामर एवं मन्थान भैरव भी है।[२२] इनका तादात्म्य सौरादि दिर्शनों के प्रतिपाद्य चरम तत्त्व के साथ किया गया है।[२३]

सप्तम पटल

इसमें महाप्रेत का दार्शनिक वर्णन है।

अष्टम पटल

पटलारंभ खेचरी आदि महादेवियों के मंत्र जिज्ञासा से है। इस पटल में खेचरी, प्रेतनाथ, क्षेत्रपाल, कौलिकपीठमन्त्र, शक्तिसंघट्टमन्त्र, महास्नान विधि, चक्रार्चन, राजराजेश्वरी विद्या प्रयोग आदि नित्य पूजा क्रम का वर्णन हैं श्लोक ५१ के पश्चात् का कुछ अंश खण्डित प्रतीत होता है। इसके पश्चात् कौलविधि से पशुबलि का विधान है। इसमें सर्व प्रथम स्वचिद्रूप पशु के उत्सर्जन का विधान है।

पञ्चभूतात्मकं पिण्डं तत्त्वषष्ट्युपबृंहितम्।
चतुर्विंशद्दलोपेतं षडध्वनिलयं परम्।।
षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं पञ्चव्योमकम्।
आब्रह्मभुवनं सर्वं स्वकुलं कौलिकं पशुम्।
निवेदयेत्परे ब्रह्मे भैरवोत्सङ्गबृंहिते।
स्वदेहोत्कर्तनं कृत्वा जुहुयात्सततं पदे।।

(५३-५५)

अन्य बलियों का भी विधान है। (५६-६३) तदनन्तर भैरवोत्सव, शयन, प्राणशक्ति जपार्चन का विधान है।

---

२२. ६/१-३.

२३. ६/१६-२२.

नवम पटल

इसमें अघोरस्वच्छन्दमन्त्रोद्धार एवं फलश्रुति वर्णित है।

दशमपटल

दीक्षा-भेद कथन दशमपटल का प्रतिपाद्य है। तंत्र का कथन है कि स्वयम्भू ने १८ प्रकार की दीक्षा बताई थी। इनमें ३ मुख्य हैं परा या शाम्भवी, अपरा या शाक्ता, परापरा या आणवी (३.१०)।

दीक्षा के इन तीनों प्रकारों में शाक्ता एवं शाम्भवी का विस्तार से वर्णन है (११.३४)।

एकादश पटल

इस पटल में महामुद्रा का गूढतंत्रयोगानुकूल वर्णन है। इस महामुद्रा का वर्णन आद्यामुद्रा (प्रसिद्ध कुण्डलिनी) के जागरण एवं षट्चक्र भेदन क्रम से खेचरी आदि मातृकाओं के यौगिक तर्पण के रूप में किया गया है (२-२०)। इसे ही शाम्भवी मुद्रा भी कहा गया है-

एषा सा शाम्भवी मुद्रा सर्वज्ञत्वफलप्रदा।। (११/२०)

द्वादशपटल

स्वच्छंदभैरव की मूर्ति यंत्र का विवरण एवं पूजा का विधान है (२-४२)।

त्रयोदश पटल

इस पटल में कौलिकमंत्रोद्धार, जपविधि योगक्रिया के रूप में विहित है। इसी प्रकरण में जपमाला निर्देश, करमाला विधि, अंगुलियों के सूक्ष्म रूप एवं पर्व रेखाओं के सूक्ष्मरूपों का वर्णन है।

कौलिक जप-विधि उसकी फलश्रुति के साथ पटल समाप्त होता है।

चतुर्दश पटल

चतुर्दश पटल में कौलिकमंत्र द्वारा षट्प्रयोगों, संग्रामजय, स्वर्णलाभ, निर्विषीकरण, आकाशोत्पतन, सर्वविद्यावाप्ति, देहान्तरसङ्क्रमण, त्रिकालज्ञत्वसिद्धि, सर्वरूपधारित्वसिद्धि, स्वेच्छारूपधारित्वसिद्धि, प्राणाकर्षण, खेचरी मुद्रा, शान्तिपुष्टि प्रयोग, रूपपरिवर्तन, सर्वदर्शित्वसिद्धि, व्याधिनाशन, आदि साधनाओं की विधि वर्णित है।

पञ्चदश पटल

इस पटल में कौलिक धूप निर्माण की विधि एवं इस धूप के प्रभाव का वर्णन है। इस धूप निर्माण की सामग्री एवं विधि नितांत गोपनीय कौलमार्गोपयोगी वस्तुओं से संवलित है।

षोडशपटल

षोडश पटल में कौलमंत्रों के आप्यायन की विधि वर्णित है। इस प्रकरण में वृद्धकाली मंत्रों का अधिकारियों का निर्देश है। आप्यायित मंत्र के प्रयोग की विधि एवं उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए इन मंत्रो के प्रयोग के लिए विशिष्ट आकार के कुण्डों का निरूपण है-

शान्तिके चतुरस्त्रं वै वश्यार्थेऽर्धचन्द्रकम्।
पौष्टिके वर्तुलं कार्यमभिचारे त्रिकोणकम्॥
सर्वकामप्रदं कुण्डं पद्माकारं प्रकीर्तितम्।

(१६/२२-२३ क) इत्यादि।

तदनंतर कुंड पूजन, हवन द्रव्य विधान एवं वाममार्गीय हवन, हवन संख्या एवं योग स्थान का निर्देश किया गया है।

सप्तदश पटल

सप्तदश पटल में काम्य हवन का विधान है, जिसमें कामनाभेद से हवन सामग्री का विस्तार से वर्णन है। इसके पश्चात् हवन के प्रभाव से विविध प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है। अंततः रहस्य पूर्ण 'मंत्राध्व' एवं 'भुवनाध्व' का वर्णन है। किन्तु यह भाग पूर्ण नहीं प्रतीत होता।

अष्टादश पटल

इस पटल में कौलिकी-चर्या अथवा आम्नाय क्रिया का उपदेश है। इसी प्रकरण में सादाख्य, ईश्वराख्य, रौद्र, वैष्णव, ब्राह्म व्योमों एवं विशुद्ध, अनाहत आदि चक्रों में रोमकूपों, द्वासप्ततिसहस्र नाडियों, विचक्र आदि में शक्तियों, देवों, सिद्धों की स्थिति का वर्णन है।

इस कालमय देह आद्याकलायुत देह को दोनों 'कवाट' संज्ञा दिया गया है। कवाट पद का अर्थ अस्पष्ट है।

ऊनविंश पटल

अष्टादशपटल की ही भाँति १९वाँ पटल भी दार्शनिक है। इसमे देहस्थ प्रयाग में छिन्नमुण्डा (चित्कला) की स्थिति की जिज्ञासा एवं समाधान है। छिन्नमुण्डा का वर्णन अत्यन्त रहस्यमय है। यह छिन्नमुण्डा गङ्गा यमुना के मध्य तेजोमुण्डासनस्था होकर घोर तपः लीना है। सुषुम्णानाडी की स्थिति इसके उत्तर में है। इडा पिंगला नाडियों की दक्षिण एवं वाम में स्थिति है। चित्कला व्योमगंगा के रूप में विशुद्ध, अनाहत, सादाख्यादि व्योमों, महानीलगिरि का क्षालन करती हुई, गंगा यमुना के मध्य छिन्नमुण्डा के मुख में विलीन होती है-

त्रिरूपेकतां याता परादूभरितभैरवात्।
प्रतिलीनान्तरे धाम्नि छिन्नमुण्डामुखान्तरे।।
(१९/२६)

छिन्नमुण्डा मूल शक्ति एवं कलामृत की भक्षिका है (२६-३१)। ७२ नाडियों में उत्तमनाडी जीवाख्या है। वही खेचरचक्र में प्रवेश करके वह्नि व सूर्य मण्डल के मध्य षट्कोण चक्र में प्रविष्ट होकर अमृतपान करने मे समर्थ है। इस रहस्यमयी क्रिया से साधक मृत्युजित् एवं वज्रकाय हो जाता है, ऐसा ग्रन्थ का आशय है।

विंश पटल

इस पटल में एकादशाक्षर मंत्र के पंचरत्न अथवा बीज मंत्रों का उद्धार एवं महाकूट मंत्र का उद्धार दार्शनिक स्तर पर ही वर्णित है। इन मंत्रो एवं कूट का स्वरूप चिद्व्योम में ही प्रकट हो सकता है। ये वर्णन अत्यन्त रहस्यमयी भाषा में है। मंत्रोपदेश के पश्चात् उसकी साधना की विस्तृत फलश्रुति (४९-६१) वर्णित है।

एकविंश पटल

यह पटल पंचामृत पान विधि की जिज्ञासा से आरंभ होता है। पंचामृत द्रव्य का सांकेतिक भाषा में वर्णन करते हुए पान-पात्र का निर्देश है। यथा-

सदा वै सात्त्विकाहारो जीर्णभुक्तो गणाम्बिके।
आदौ वह्निर्विषं पश्चात्त्यक्त्वा पीयूषमुत्तमम्।
ग्राहयेत्स्वकुलोद्भूतं मध्यवृत्तिपदेस्थितम्।।
रसं वज्रामृतं दिव्यं हेमपात्रेऽथ राजते।
काष्ठे वा बिल्वजे पात्रे अयस्कान्तेऽथ रत्नके।
सुपीतं मुनिसंख्याभिर्दशैकार्णेन मन्त्रितम्। (२१-५-७)

इस पंचामृतपान की महिमा अचिंत्य एवं सर्वसिद्धिदायक है। इस प्रकरण में अन्य औषधियों के चामत्कारिक प्रयोगों का भी वर्णन है। एकैक द्रव्यों के अतिरिक्त "कौलिकयोग" नामक औषधिकल्प का भी वर्णन है। यथा-

अथान्यं कौलिकं योगं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
गृह्यवज्रामृतं पूर्वं सप्तविंशपलानघे।
धात्रीफलरसस्यैव पलत्रयसमन्वितम्।
त्रिसप्ताहोशितं पश्चादुद्धरेद्वीरनायकः।

एकादशाक्षरे मन्त्रे पादमात्राभिमन्त्रितम्।।
सारमेकं प्रयोक्तव्यं नस्ये पानेऽपराह्णके।
मृत्युजिद्वज्रकायश्च वलीपलितवर्जितः।।
कामवद्विचरेद्वीरो दशनागायुतो बली।
अजितस्समरे नित्यं सदेवासुरमानुषैः। (२१/२३-२७)

द्वाविंश पटल

बाईसवें पटल में इसी प्रकरण को बढाया गया है। एवं ''राजवतीक्रिया'' नाम से गंधक खनिज के भक्षण के विशेष एवं कठिन प्रयोग का वर्णन है। जिसके प्रभाव से सभी प्रकार की सिद्धियाँ सम्भव हो सकती हैं। इसी क्रम में रासायनिक विधि से स्वर्णनिर्माण की क्रिया बताई गई है।

द्वात्रिंश पटल

इस पटल में ''पारमेश्वरी क्रिया'' का वर्णन है यह क्रिया वाम मार्गीय साधक ही कर सकता है। इसमें भी वज्रामृतादि का प्रयोग विधिविशेष से होता है। इसके पश्चात् वाममार्गीय दिव्य होम एवं होमकुण्डार्थ पराशक्तिचयन का विधान है। इस होम की फलश्रुति के साथ पटल का समापन हुआ है।

चतुर्विंश पटल

इस पटल में कौलिकी वीरचर्या का वर्णन है। यह चर्या रहस्यमयी है। इसके उपक्रम में ग्रंथ का कथन है-

यावन्न ज्ञायते चर्चा देहस्था चितिरव्यया।
परानित्योदितानन्ता ब्रह्मसत्तास्वरूपिणी।
क्षेत्राष्टकसमोपेता सिद्धाष्टकपरीवृता।
अष्टाष्टकगताह्येषा चक्राष्टकपरीवृता।
ह्यविज्ञाय बहिर्मूढा पर्यटन्ति नराधमाः।।

(२४/१०-१२)

इस चित्कला स्वरूप वर्णन के साथ उससे संबद्ध 'अष्टाष्टक' का वर्णन है। इन्हें ब्राह्याभ्यन्तरस्थ बताया गया है। इनमें श्मशानाष्टक, क्षेत्राष्टक, पीठाष्टक भैरवाष्टक, वीराष्टक, योगिन्यष्टक, क्षेत्रपालाष्टक, सिद्धाष्टक की गणना एवं भेद वर्णन है।

पञ्चविंश पटल

इस पटल में घोर साधना में लीन साधक के प्रमाद एवं उससे होने वाली हानियों की एवं अप्रमादी-साधक के लक्षणों की जिज्ञासा है। तदनंतर द्वादश दिव्यों का लक्षण, कौलमार्गीय महाम्नाय का संकेत **'मन्त्रसन्नद्धसाधक'** का स्वरूप वर्णित है।

षट्विंश पटल

खेचर्यादि सप्त शक्तियों के निर्गम एवं स्वरूप वर्णन इस पटल में है।

सप्तविंश पटल

इसमे खेचरी आदि के **'मंत्र-सप्तक'** का विधान एवं उनके प्रयोग एवं साधना का स्वरूप रहस्यरूप में वर्णित है।

अष्टाविंश पटल

इस पटल में **'मन्त्रसन्नद्धवीर'** की रहस्यमयीचर्या एवं उसके व्यवहारों का वर्णन है। साथ ही अघोरी के अद्भुत-प्रताप का वर्णन है।

ऊनत्रिंश पटल

इस पटल में रहस्य-मयी-वीरचर्या के द्वितीय प्रकार एवं **'श्मशान-साधना'** के साथ समयाख्या महाविधा का विधान है।

त्रिंश पटल

इस पटल में तांत्रिक **''युग्मभस्म''** के निर्माण एवं प्रयोग का वर्णन है एवं उसकी फलश्रुति वर्णित है।

त्रयस्त्रिंश पटल

इस पटल मे वीर-भाव-प्राप्त साधक का साधना का उपदेश है। एव मंत्र-दीक्षा का प्रकार विधिपूर्वक वर्णित है।

चतुस्त्रिंश पटल

इस पटल में गुरु शिष्य के कौलमार्गानुमत लक्षण एवं चर्चा का वर्णन है। इसके साथ ही दीक्षा के लिए आवश्यक कौलिक मूर्धाभिषेक मंत्रदीक्षा एवं गुरुदक्षिण का विधान है।

पञ्चत्रिंश पटल

पटल का प्रथम प्रतिपाद्य **''काल ज्ञान''** की विधि का वर्णन है जिससे साधक भविष्यत् काल में होने वाली घटनाओं का ज्ञान कर सकता है। द्वितीय प्रतिपाद्य सप्तदशाक्षरीविद्या की रक्षिका योगिनियों के प्रसादन की विधि है।

ग्रन्थ में उल्लिखित विशेष तांत्रिक साहित्य

तृतीय एवं चतुर्थ पटलों में पूर्वग्रंथों का नामोल्लेख है (३/७१-७८, ४/६१,६३)। ये ग्रंथ वाम-मार्गीय साधना के विधान से संबद्ध थे। इनमे से अधिकांश ग्रंथों के उद्धरण प्राप्त होते हैं एवं कुछ ग्रंथ मातृका रूप में अथवा प्रकाशित होकर उपलब्ध भी हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

१. उच्छुष्म

इस ग्रंथ का 'उच्छुष्म-शास्त्र' एवं 'उच्छुष्म-भैरव' के नाम से अभिनवगुप्त के तन्त्रसार, परात्रिंशिकाव्याख्या में एवं शिवसूत्रविमर्शिनी (पू. ८) एवं स्वच्छन्दतन्त्र (भाग-३) में उद्धरण प्राप्त होता है। पूर्ण ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

२. अयोध्या यामल

अब तक इसका कोई उल्लेख अन्यत्र नहीं प्राप्त हुआ है।

३. अनसूया डामर

इस ग्रंथ का उल्लेख भी नहीं मिला।

४. आनन्द

इसका अपर नाम 'आनन्दमत' है। 'आनन्दशास्त्र' के नाम से तन्त्रसार में अभिनवगुप्त ने उद्धृत किया है। तन्त्रालोक में भी इसका उल्लेख है। इण्डिया-आफिस पुस्तकालय लंदन में १९१३ श्लोकों का 'आनन्दमत' (मातृका सं. २५४१ के रूप में) सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ नित्याषोडशिकार्णव के अंतर्गत 'भग-मालिनी-संहिता' का अंश है। कविराज जी (तांत्रिक-साहित्य) के अनुसार इसका प्रचार दक्षिण भारत में अधिक था। कैट्लागस्-कैटलागोरम् २/९ इसे २० पटलों वाला ग्रंथ बताता है। न्यू. कैट-कैट २/१०३ में इसे पांचरात्र आगम बताया गया है।

शिवसूत्रविमर्शिनी (पृ. १००) से *आनन्दभैरवतन्त्र* के ३ पाद (१/२ श्लोक) उद्धृत है। ग्रंथ का वास्तविक स्वरूप ग्रंथ के प्रकाश में आने पर स्पष्ट होगा।

५. ऋद्धिकालीमतम्

इस ग्रंथ का भी उल्लेख नहीं मिला।

६. क्रमाख्यमत यामल

ताराभक्तिसुधार्णव किसी 'क्रम संहिता' को उद्धृत करता है। *श्रीकण्ठी सूची* में "मत" नामक तांत्रिक ग्रंथ की गणना ६४ तंत्रग्रंथों में की गयी है। उक्त ग्रंथ का तादात्म्य किससे है यह अनिश्चित है।

७. गह्वर

इसे सम्भवतः 'कुलगह्वर' नाम से *महार्थमञ्जरी-परिमल* एवं *तंत्रालोक-विवेक* (३/१४७) में उद्धृत किया गया है। *स्वच्छन्दतन्त्र* (४/१४९ टीका) में "*श्रीमद्गह्वरे*" नाम से एक श्लोक उद्धृत है।

८. कुलार्णव

यह प्रसिद्ध एवं आर्थर एवॉलन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ है। इसके स्वरूप आदि के विषय में चिंताहरण चक्रवर्ती का लेख (ए.बी.ओ.आर.आई. १३ पृ. २०७-२११) भी प्रकाशित है। पी. वी. काणे इसे १००० ई. के पूर्व की रचना मानते हैं। यद्यपि मूल कुलार्णव ग्रंथ प्राप्त ग्रंथ से बृहदाकार था। यह भी संभव है कि इसके लघु एवं बृहत् दो संस्करण हों। ग्रन्थ की पुष्पिका के अनुसार यह १२५०० श्लोकों वाले महाग्रंथ का पंचमभाग है। तथापि प्राप्त कुलार्णव मूल-कुलार्णव का प्रतिनिधि संभवतः नहीं है। क्योंकि ज्ञानानंद के 'कौलावली' में प्राप्त उद्धरण इस ग्रंथ में नहीं मिलते।

अतः प्रकृत ग्रंथ में उल्लिखित कुलार्णव संभवतः मूलकुलार्णव का वाचक है जो कि लुप्त है।

९. जयद्रथ यामल

यह ४ षट्कों में विभक्त है। प्रत्येक षट्क में ६००० श्लोक हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ २४००० श्लोकों का विशाल ग्रंथ है। नेपाल दरबार पुस्तकालय में (मा.सं. १/२५८) सुरक्षित है। मातृकाकालिपि काल ने. सं. ८४३ (१७२३ ई.) है।

१०. झङ्कार या झङ्कारकरवीरतन्त्र

यह वाममार्गीय पूजा विधान का ८००० श्लोकों वाला ग्रंथ है। यह भी नेपाल दरबार पुस्तकालय (मा.सं. १/१०९) में प्राप्य है।

११. तोत्तलमतम्

स्वच्छन्दतन्त्र (७/४४) की टीका में क्षेमराज 'तोतल' नाम से उद्धृत करते हैं। चौसठतन्त्रों में त्रोतल की गणना है। इसकी मातृका प्राप्त नहीं है।

१२. नरसिंहमतम्

नरसिंह आगम १८ रुद्रागमों में परिगणित है। *फेत्कारिणीतंत्र* में '*नारसिंहतंत्र*' का उल्लेख है। किन्तु 'नरसिंहमतम्' नाम से उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः नारसिंहतंत्र ही अभीष्ट हो।

१३. त्रिशीर्ष

'त्रिशिरोमतम्' नाम से *तंत्रालोक-विवेक* (१/८६, ९० १०५) ३/१३७-४०) *प्रत्यभिज्ञाहृदय* (सू.४०) *शिवसूत्रविमर्शिनी* (पृ.६०) में उद्धरण मिलते हैं। सम्भवतः इसे ही त्रिशीर्ष कहा गया है।

१४. देवी यामल

इसका उद्धरण *ताररहस्य-वृत्ति, तंत्रालोक, ताराभक्तिसुधार्णव* एवं *कुल-प्रदीप* में प्राप्त होता है। *परशुरामकल्पसूत्र* (रामेश्वर कृत १९वीं शती) टीका में भी उद्धरण मिलता है। *तंत्रालोक* (२२.३१२) में इसके रचयिता ईशान शिव कहे गए है।

१५. पिचुमतम्

ब्रह्मयामलांतर्गत प्राचीनतम अंश के रूप में विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है। इसकी १०५२ ई. की तालपत्र मातृका नेपाल में सुरक्षित है। (मा.सं. ३/३७०) यह ग्रन्थ कुल ३६५ श्लोकों में पूर्ण है। दो अन्य मातृकाएँ भी (नेपा.कैट. २/पृ. ६१ में) उल्लिखित हैं।

यह शैवागम के भैरवधारा का प्रतिनिधि ग्रंथ है एवं भैरव का शिव रूप में शक्तियुत होकर चक्रार्चन आदि का विधान करता है। इसकी वर्णन शैली रहस्यमयी तथा भाषा अपाणिनीय है जो प्राचीनतम तांत्रिक दृष्टि का अंतःप्रकाशन करती है। टी. खोद्रियान् ने इसके २४वें पटल को इसकी रहस्यात्मकता प्रदर्शित करने के लिए उद्धृत किया है।[२४]

इस नाम के अन्य हस्तलेख कलकत्ता (रा.ए.सो.ब. ५८९२) में है। यह हस्तलेख १००० श्लोकों वाला है।

१६. मत

तंत्रालोक (१/१८) में एवं स्वयं अभिनव गुप्त (के.सी. पाण्डेय, पृ. ५४३) इसका उल्लेख करते हैं। यह संभवतः *कुब्जिकामत* की परम्परा का ग्रन्थ रहा होगा।

१७. मन्थानभैरव

इसका खंडित हस्तलेख नेपाल में (मा.सं. १/२७९ ने च.पु.) सुरक्षित है। कलकत्ता (रा.ए..सो.ब. - ८८१९) में प्राप्त है।

पुष्पिकानुसार ग्रंथ कादिमत का प्रतिपादक है। पुष्पिका भी इस ग्रन्थ को २४००० श्लोकों का बताती है। किन्तु वस्तुतः ग्रंथ में मात्र ५००० श्लोक प्राप्त है। प्राप्त सभी मातृकाएँ

---

२४. *The Tāntric Literature* – T. Goudrian, p. 44 ed. J. Gonda.

अपूर्ण है। संभवतः ग्रंथ बृहदाकार था एवं इसका काल १२०० ई. से पूर्व ही था। इसमें त्वरिता (पृ. ७६) त्रिपुरा (पृ. ७८) आदि के विधान उल्लेखनीय हैं।

१८. महाकुल

इस तंत्र का एक मात्र उद्धरण जन्ममरणविचार नामक कश्मीरीय ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। अन्यत्र इसका विवरण नहीं मिलता।

१९. महासरस्वतीमतम्

महासरस्वतीमतभट्टारक के नाम से इसका एक हस्तलेख नेपाल में है। (सू.सं. १/१३२० (द))। पुष्पिका के अनुसार यह ग्रंथ *महामंत्रसार* का अंश है। *महामंत्रसार* २४००० श्लोकों का कहा गया है। *महासरस्वतीमत* की मातृका में १८०० श्लोक १० आनन्दों में विभाजित हैं।

२०. महासारस्वततम् का उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

२१. महास्वच्छन्दकौल

योगिनीहृदयदीपिका (पृ. २) में मात्र एक श्लोक इस ग्रंथ का उद्धृत है।

२२. मालिनीविजय

पूना (डे.का.मा.सं. ४८८) में इसका ४२ पत्रों का हस्तलेख है। इसकी पुष्पिका में इसे पूर्वशास्त्र नाम दिया गया है। इस तंत्र के उद्धरण *तंत्रसार, योगिनीहृदयदीपिका, महार्थमञ्जरी परिमल, स्पन्दविवृति, स्पन्दप्रदीपिका, शक्तिरत्नाकर, आगमतत्वविलास* में प्राप्त होते हैं। इस मातृका का लिपिकाल १८७५-७६ ई. है। ग्रंथ का निर्माण १००० ई. से पूर्व ही हुआ होगा। इस ग्रंथ को आगम की द्वैतधारा का ग्रंथ माना गया है। इस पर क्षेमराज ने विमर्शिनी एवं भास्कर (११वीं शती) ने वार्तिक भी लिखा था। यह त्रिक दर्शन के विकास के पूर्व का ग्रंथ है।

२३. रुद्रयामल

यह ग्रंथ सर्वाधिक रहस्यमय यामल ग्रन्थ माना गया है। यामल ग्रंथों की सभी सूची में इसका नाम पठित है किन्तु इसकी सत्ता संदिग्ध मानी जाती है। ५० से अधिक ग्रंथ स्वयं को रुद्रयामलान्तर्गत घोषित करते हैं। इस ग्रंथ को त्रिवेन्द्रम (कैट.मा.सं. १००७ ख) कलकत्ता एवं (५८६२-५८६३) नेपाल (ने.द. २/२४६ (६) ई.) में एवं राजेन्द्रलाल मित्र की सूची में (१/३२३) सूचीबद्ध किया गया है। *सौन्दर्यलहरी* की लक्ष्मीधरा टीका, *कुलप्रदीप, ताराहरस्यवृत्ति, ताराभक्तिसुधार्णव, आगमतत्त्वविलास, सर्वोल्लास, कालिकासपर्याविधि, आनन्दलहरी-*

तत्त्वबोधिनी, तंत्रसार परात्रिंशिका में उद्धरण प्राप्त हैं। परात्रिंशिका में इसका उद्धरण *रुद्रयामालीय विज्ञानभैरव* के नाम से है।

२४. रुद्रभेद

इसकी गणना श्रीकण्ठी के चौसठ तंत्रों में है। किन्तु मातृका प्राप्त नहीं है।

२५. विश्वरूपमत

इस ग्रंथ का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। *विश्वरूपनिबन्ध* का उद्धरण पुरश्चर्यार्णव में मिलता है।

२६. लाकुल

इस नाम से कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं है।

२७. लम्पटा

पिचुमतम् के प्रथम पटल के ४४वें श्लोक में सप्त भैरवयामलों को दुर्वासा की रचना कहा गया है इनमें *पिचु सरस्वती, जयद्रथ, रक्ता* एवं *लम्पटा* की गणना है। (दे.पाण्डेय-अभिनवगुप्त पृ. ९१७)।

२८. विष्णुयामल

इसकी मातृका *ज्योत्स्ना टीका* के साथ तंजौर राजमहल (मा.सं. ६५०, ६५१) में है। इस ग्रंथ की गणना ६४ तंत्रों में होती है। *प्राणतोषिणी, सर्वोल्लास, स्पन्दप्रदीपिका, ताराभक्तिसुधार्णव* में उद्धरण मिलते हैं।

२९. शुष्कामत

इस ग्रंथ का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता।

३०. संकर्षिणीकुल

संकर्षिणी यामल नाम से सम्भवतः इस ग्रंथ का उद्धरण *तन्त्रालोक टीका* में मिलता है।

३१. सम्मोहनीतन्त्र

८०० ई. में कंबोडिया में किसी ब्राह्मण ने ४ तंत्रों का परिचय वहाँ के राजकुल से कराया था इनमें *विनाशिख* (कुल ३९६ लोक प्राप्त) में ४ श्लोक में *सम्मोहन नयोत्तर शिरश्छेद* यामलों का उल्लेख है। कम्बोडिया के एक अभिलेख में भी इन ग्रंथों का उल्लेख

है (एस.सी. पृ. ६)। ग्रंथ में संभवतः सम्मोहन तंत्र का सम्मोहनीतंत्र नाम से कहा गया है।

३२. सिद्धयोगेश्वरी तंत्र

इसकी गणना वामकेश्वरी मत के ६४ तंत्रों में है। तंत्रालोक के अनुसार इस तंत्र का उपदेश *भैरव-भैरवी-स्वच्छन्द-नाकुल-अनन्त-गहनेश* क्रम से हुआ है।

३३. हेरूक

हेरूक नाम से तंत्र ग्रंथ का उल्लेख नहीं मिलता, तथापि *हारक* तंत्र की सत्ता कलकत्ता (मा.सं. ६०४१) में है। यह तंत्र भी कादि क्रम का प्रतिपादक है।

३४. हड्ढामत

इस नाम से किसी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता।

ग्रन्थरचनाकाल

वृद्धस्वच्छन्दतन्त्र की संरचना ११वीं सदी के पश्चात् की नहीं प्रतीत होती है। वस्तुतः इस "*वृद्धस्वच्छन्दसंग्रहकौल*" के रचना काल के अनुमान का प्रमुखतम साधन अतः साक्ष्य है। क्योंकि इस ग्रंथ के उद्धरण नहीं प्राप्त होते। "*स्वच्छन्द*" अथवा "*महास्वच्छन्दसंग्रह*" नाम से जो उद्धरण त्रिकदर्शन के ग्रंथकारों ने उद्धृत किए हैं, वे श्लोक ग्रंथ की प्रकृति एवं विषय से सम्बद्ध होते हुए भी उपलब्ध कलेवर में प्राप्त नहीं होते। अतः मात्र ग्रंथ में प्राप्त सामग्री के आधार पर कालानुमान का यत्न किया जा सकता है।?

१. ग्रंथ की भाषा में व्याकरण की अशुद्धियाँ भवते, सिद्धयते (१३/५३) पृच्छित्वा परे ब्रह्मे योगिनीपिवा सर्व शत्रुकानि (१४/३०) आदि पदों का बहुशः प्रयोग प्राचीन तांत्रिक प्रकृति का परिचायक है। इस प्रकार की व्याकरणात्मक अशुद्धियाँ प्राचीनतम तांत्रिक साहित्य की सामान्य प्रकृति थीं। अतः ग्रंथ भाषा की दृष्टि से ग्रंथ को अपेक्षाकृत नवीन नहीं कहा जा सकता।

२. ग्रंथ स्वयं अपने स्वरूप एवं सत्ता के विषय में निम्नांकित सूचना प्रस्तुत करता है।

सहस्त्रं सम्प्रवक्ष्यामिकामरूपावतारकम्।
न मयाकस्यचित्ख्यातं सर्वस्वमिवगोपितम्।।
व्याधिभक्षेति विख्यातं वृद्धस्वच्छन्दभैरवम्।
सर्वार्थकामफलदं सप्तस्त्रोतः क्रमोद्भवात्।

महाकौलाशैव - - - - - - पातालपिङ्गले।
सहस्त्रषट्त्रिंशमतसर्वस्वं प्रकटीकृतम्।।

(२/६३-६५)

इसी प्रकार द्वितीयपटल की पुष्पिका ध्यातव्य है-

"इति श्री महाकौलागमे पातालपिङ्गले षट्त्रिंशत्सहस्त्रसंहितायां द्वादशसहस्त्रखण्डविनिर्गते श्रीकामरूपावतारे सर्वशास्त्रविनिर्णये वृद्धस्वच्छन्दे महाकौलाभिधाने। व्याधिभक्षभैरवे द्वितीयः पटलः।।

पुष्पिका इस ग्रंथ के मूल उत्स का परिचय देती है। मूल में *महाकौलार्णवे* एवं पुष्पिका में *महाकौलागमे* का प्रयोग है। प्रस्तुत ग्रंथ किसी *महाकौलागम* के *पातालपिङ्गला संहिता* के ३७००० श्लोकों में १२००० श्लोकों के अनन्तर *कामरूपावतार खण्ड* का अंश है। इस प्रकार *महाकौलागम पातालपिङ्गला पिङ्गला* मत या *पिङ्गलातन्त्र* से भिन्न नहीं प्रतीत होता। *पिङ्गला* की काठमाण्डू में रक्षित मातृका अपूर्ण एवं मात्र ३७५० श्लोकों की है। (मा.सं. २/९६) किन्तु इस हस्तलेख में ग्रंथ स्वतः में समाहत कामरूपी या कामरूपावतारप्रस्तार में ८००० श्लोक होने की सूचना देता है। पिंगला नामकरण का हेतु मात्र पिंगला द्वारा भैरव से हुए प्रश्नोत्तर के कारण ही हुआ होगा।

यह ग्रन्थ महाभैरवापरनामधेय ब्रह्मयामल का अनुगमन करती है। ब्रह्मयामल का महाभैरव नामकरण उसी के पुष्पिका में उल्लिखित है एवं उसे "*द्वादशसाहस्त्रक*" भी कहा गया है। ब्रह्मयामल में भी *कामरूप प्रस्तर* नाम से एक भाग कहा गया है। पिंगलामत की प्राप्त मातृका की तिथि ११७४ ई. है। यदि इन समानताओं के आधार पर प्रस्तुत ग्रंथ को पिंगला के "कामरूपी" खंड का भाग स्वीकार करें तो इसे ईसा के प्रथम सहस्त्राब्दी की रचना मानना उचित होगा। पिंगलामत *जयद्रथयामल* का भाग बताया जाता है। तथापि जयद्रथ ६४ तंत्रों में परिगणित है।

३. ग्रन्थ के १९-२४ पटल में अनेक प्रकार के औषधीय कल्पों का प्रयोग है। इनमें गंधक (२२-२३) धात्री फल रस (१९) त्रिफला (२२) आदि के प्रयोगों की चर्चा है। ये योग *अष्टाङ्गसंग्रहसंहिता* के पूर्व के योग प्रतीत होते हैं। साथ ही दृढबल प्रतिसंस्कृत *चरक संहिता* के पूर्व की संहिता काल के हैं। इनमें अनेक औषधियों के कल्प का विधान नहीं है। अपितु एक या दो औषधियों के प्रयोग की चर्चा है। साथ ही ग्रंथ रचना-काल में प्रारंभिक अरिष्ट निर्माण पद्धति का अविष्कार हो चुका प्रतीत होता है जो मात्र दो या तीन मूल औषधियों से निर्मित होता था। २१वें पटल में वर्णन है-

गृह्य वज्रामृतं पूर्व सप्तविंशपलानधे।
धात्रीकलरसस्यैव पलत्रयसमन्वितम्।

अयस्कान्ते तु वै भाण्डे शालिमध्यान्तरे क्षिपेत्।
त्रिसप्ताहोषिते पश्चादुद्धरेद्वीर नायकः।।

(२३-२४)

इस प्रकार के आयुर्वेदिक योगों का प्रचलन दृढबल पूर्व काल में ही था। चरक के आधुनिक संस्करण में बहुऔषधीय अरिष्ट के विधान संग्रहीत है।

४. चतुष्पीठ, मन्त्र-विद्या-मुद्रा-महामण्डल-योग आदि पीठों, अन्य तंत्र पीठों, शाक्त, शाम्भव, सौर, वैष्णव, बौद्ध एवं आर्हत षड्विध तांत्रिक सम्प्रदायों, कौल, कुल, महाकौल आदि १७ प्रकार के कौल संप्रदायों की सत्ता ग्रंथ स्वीकार करता है (१/२-२८)। इसी प्रकार चतुर्वेद संबंधित उपासना पद्धति *भूततन्त्र, गारूडतन्त्र, श्रीमतादि* सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए असंख्य तांत्रिक संप्रदायों के पूर्व में प्रचलित होने की घोषणा करता है। साथ ही यह बताता है कि घोर मायामय कलिकाल में पूर्वोक्त साधनाओं की कठिनता को एवं मनुष्य के घटते सत्त्व को ध्यान में रखकर प्रस्तुत ग्रन्थ का अवतरण किया जा रहा है। ये वचन प्राचीन तंत्रों में समान रूप से प्राप्त होते हैं।

५. ग्रंथ का वचन है कि स्वच्छन्दनाथ के द्वारा अवधीरित ज्ञान सागर का मंथन करके दुग्ध से घृत की भांति इस 'सर्व-कामार्थ फलद' कामरूपावतार का प्रणयन हुआ है एवं व्याधिभक्षभैरव उसी का अंशभूत है (१/५६-६५)। इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों के विषयों का संग्रह करके इस ग्रंथ की रचना हुई। यह स्वयं ग्रंथ की घोषणा है।

६. ग्रंथ में जिन पूर्व प्रचलित ग्रंथों का नामशः उल्लेख हुआ है। उनमें कोई भी ग्रंथ प्रथम सहस्राब्दी के पश्चात् का नहीं माना गया है। कुछ ग्रंथों का हस्तलेख भी ११वीं शती का है। (ब्र.या.पिचु. पाता. पिङ्गलामतम् ११७४ ए.डी.)

७. ग्रंथ को *गाणपत्य सम्प्रदाय* का ज्ञान नहीं था। उत्तरकालीन नित्याषोडशिकार्णव में परिगणित यामलों में प्रथम बार गणेशयामल की गणना है। अतः ग्रंथ का प्रणयन काल स्थिर रूप से यदि ईसा के पूर्व या आरंम्भिक शती का कहने में बाह्य प्रमाणों का अभाव एवं '*स्वच्छन्दतन्त्र*' का समकालित्व या परवर्तित्व बाधक होता हो तब भी इसे प्रथम सहस्राब्दी के किसी काल-खण्ड में प्रणीत स्वीकार करना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

कार्तज्ञ

वाममार्गीय परम्परा के इस दुर्लभ ग्रन्थ के सम्पादन का उत्साह श्रद्धेय गुरु एवं विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ. गयाचरण त्रिपाठी जी से मिला अतः प्रथमतः उन्हें प्रणाम करता हूँ। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के विद्वान् एवं सहृदय निदेशक प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री जी के सत्प्रयास एवं प्रशासनिक एवं वित्तीय सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाश में आ सका एतदर्थ उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

ग्रन्थ के मुद्रक डॉ. राधेश्याम शुक्ल को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। उन्होंने अत्यल्प काल में इस ग्रन्थ का सुन्दर मुद्रण कर विद्वानों के लिए सुलभ बनाया। ग्रन्थ सम्पादन में जो त्रुटियाँ हैं वे मेरी अल्पबुद्धि का परिणाम हैं। गुण भगवती आद्या का कृपा प्रसाद है। विद्वज्जनों एवं साधकों के कर कमलों में यह ग्रन्थ समर्पित करते हुए—

विनयावनत

प्रकाश पाण्डेय

वृद्धस्वच्छन्दसङ्ग्रहतन्त्रम्

।। अथ वृद्धस्वच्छन्दसंग्रहः प्रारभते।।

।। प्रथमः पटलः।।

[1]ॐ स्वस्ति।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीगुरवे सरस्वतीरूपाय नमः।।

मङ्गलाचरणम्

ॐ आकालादि शिवान्तं तु ([2]जगदेतच्चराचरम्)।
([3]यस्यभासनतो भाति) सर्वं नमामि तं जगद्गुरुम्।।१।।

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयम्।
ब्रह्मविष्णवीशरुद्रेभ्यः [4]सर्वतत्त्वाच्चराचरम्।।२।।

(रुद्र) शक्रादिभिर्देव्या लीलया सम्प्रवर्तते।
तं शक्तिचक्रविभवं प्रभवं श्रीगुरुं नमः।।३।।

शास्त्रजिज्ञासोपक्रमः

कैलासे तु महापीठे मणिरत्नविभूषिते।
सर्वौषधिसमाकीर्णे नानाधातुविचित्रिते।।४।।

नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते।
नानापक्षिगणैर्दिव्यैः षट्पदध्वनिनादिते।।५।।

दिव्यगन्धवहे रम्ये नानालङ्कारभूषिते।
नाना द्रुमलताकीर्णे पद्मिनीखण्डमण्डिते।।६।।

नाना फलामृतैर्दिव्यैः षड्रसास्वादबृंहितैः।
तत्रस्थं तु सुखासीनं भैरवं विगतामयम्।।७।।

---

१. ॐ स्वस्ति। प्रजात्यः। श्री गुरवे नमः। - ख।
२, ३. नास्ति, क.। कोष्ठके लिखितः पाठः, ख,।
४. नास्ति ख.।

भैरवी सहितं नाथं देवदेवं जगद्गुरुम्।।८।।

चण्डनन्दि महाकालगण - - षभृङ्गिराट्।
स्तूयमानं गणवरैर्ब्रह्मविष्णु पुरस्सरैः।।९।।

- - - - समारूढं गणमातृनिषेवितम्।
सिद्धगन्धर्वनमितं सुरासुरनमस्कृतम्।।१०।।

ऋषिभिः किन्नरोद्गीतं यक्षरक्षोरगैर्नुतम्।
विद्याधराप्सरः सिद्धैर्मातृरुद्रगणावृतम्।।११।।

महाविनोदाभिरतं वीरवीरेश्वरावृतम्।
महापञ्चामृतोन्मत्तं महाविष्कृ[1]तमेखलम्।।१२।।

स्फूर्जत्फेत्कारबहुलं [2]जगद्धासैकघस्मरम्।
महाभैरव [3]नाथं तु महामुद्राकरार्पितम्।।१३।।

स्फूर्जन्महासवं दिव्यं सृष्टि संहारकारकम्।
- - - - - - - - - - - - - - रवम्[4] ।।१४।।

उदितं भैरवं दृष्ट्वा भैरवीपरमा कला[5]।
- - - तीर्णा तु शक्तिराद्या मनोन्मनी।।१५।।

साष्टाङ्ग प्रणिपातेन पादौ जग्राह शङ्करम्।
घोरं संसारमतुलं दृष्ट्वा तु घटयन्त्रवत्।।१६।।

भ्राम्यमानं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
जन्तोरुद्धारणार्थाय कृपया जगदम्बिका।।१७।।

---

१. कृ., क.।
२. जगद्ग्रा सैक. इति त्रुटितशेषः पाठः, क.।
३. नाथं तु इति नास्ति क.। कोष्ठे लिखितं, ख.।
४. ख.।
५. कल्पितः पाठः। मातृकयोरक्षरद्वयं लुप्तम्।

हंसगद्गदया वाचा त्विदं वचनमब्रवीत्।
मुदयः परया भक्त्या परिपृच्छति महौजसा॥१८॥

शास्त्र जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

भगवन्देव देवेश चन्द्रमौले शुभानन।
सर्वज्ञ सर्वकर्ता च[1] सर्वव्यापिन् सदोदित॥१९॥

सर्वावस्थान्तरायस्थ कामकालान्धकापह।
सप्तस्त्रोतोद्भवं दिव्यं ज्ञानविज्ञानसागरम्॥२०॥

कोटिकोटि प्रविस्तीर्णं भेदान्तर विसर्पितम्।
चतुष्पीठं महातन्त्रं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥२१॥

ज्ञातं मे त्वत्प्रसादेन मन्त्रपीठं विशेषतः।
विद्यापीठं महेशान मुद्रापीठेश्वरेश्वरम्॥२२॥

महामण्डलपीठं तु योगपीठं जगद्गुरुम्।
तथान्यन्तन्त्रपीठं वै राजराजेश्वरेश्वरम्॥२३॥

शतकोटिसुविस्तीर्णमेकैकञ्चावधारितम्।
शतकोटि प्रविस्तीर्णं कृतपूर्वान्वयं मया॥२४॥

तथा श्रीपश्चिमं दिव्यं सप्तकोट्योदितान्तिमम्।
दक्षिणं चोत्तरं चैवमन्वयेवं चतुर्विधम्॥२५॥

शाक्तं च शाम्भवं चैव सौरं चैव तु वैष्णवम्।
बौद्धं चैवारहन्तं च षड्विव ---------॥२६॥

तन्त्राश्च विविधाः कौला - - - - - - - - -।
कुल कौला[2]न्यनेकाश्च महाकौला ----॥२७॥

---

१. कर्तार इति स्थाने कर्ता च प्रकल्पितः।

२. कौल्या, क.।

- - - - - - सर्वे तथान्याश्च महाक्रमाः।
सप्तादशविधा - - - - - कुलक्रमाः॥२८॥

सगर्भाश्चैव निर्गर्भा निर्बीजान्तरगर्भकाः।
आस्तिकानास्तिकाश्चान्या समाश्च विषमास्तथा॥२९॥

[1]कीलितोऽकीलिताश्चान्या समस्तव्यस्तसङ्कुलाः।
सस्फुराविस्फुराश्चान्या हृतवीर्याश्च दारिताः॥३०॥

सर्वे भृङ्गाश्चतुर्वेदा भूततन्त्राश्च गारुडाः।
शाक्ताश्च शाम्भवाश्चान्या श्रीमताद्याद्यनु[2]क्रमाः॥३१॥

एते चान्ये च बहव [3]उक्ता उक्तान्यनेकशः।
भूरिकोटच्यो ह्यसंख्याता कुलकौलेश्वरेश्वराः॥३२॥

पुरा श्री देवदेवेन भैरवेण महात्मना।
[4]अजेनाव्यक्तनाथेन दिव्यरूपेण शम्भुना॥३३॥

[5]कथितास्ते महानाथ त्वत्प्रसादावधारिताः।
अदिव्ये मनुषे लोके चतुर्थे युगपर्यये॥३४॥

[6]कलौ मायामये घोरे दुस्तरेऽस्मिन् भवार्णवे।
शब्दादि मकराकीर्णे कामक्रोध भयाकुले॥३५॥

इन्द्रियग्राहकल्लोलविषयावर्तसङ्कुले।
अहङ्कारादिगहने [7]दुस्तरोर्मि-तरङ्गिते॥३६॥

---

१ कीलितोत्कीलिताश्चान्या, ख.।
२ 'द्यनु' इति 'दिनु' इति स्थाने कल्पितः।
३ 'उक्तान्युक्ता', क.।
४ 'व्यक्तनाथेन दिव्य - - षेण' इति खण्डितः पाठः, क.।
५ 'कथितास्ते महा - - - दावधारिताः' इति खण्डितः पाठः, क.।
६ 'कलौ' इति नास्ति, क.।
७ दुस्तरेऽस्मिन्, क.।

दुर्निरीक्ष्ये महाभीमे ह्यगाधे दुःखसागरे।
न शक्नुवन्ति मनुजा ह्यल्पवीर्यपराक्रमाः॥३७॥

अल्पायुषोऽल्पवित्ताश्च ह्यल्पसत्त्वाश्च शङ्कर।
कामक्रोधभयग्रस्ता जरादारिद्र्यपीडिताः॥३८॥

अथोक्तं सङ्ग्रहं तस्य ह्यल्पशास्त्रार्थविस्तरम्।
[1]प्रयोगशेषबहुलं भुक्ति मुक्ति फलप्रदम्॥३९॥

आद्यं हृदयसर्वस्वं योगिनीनां महोदयम्।
दारिद्र्यदुःखशमनं - - - - - - - - - - - -॥४०॥

सर्व सौभाग्य जननं सर्वकाम विभूतिदम्।
सर्वाधिकारफलदमलक्ष्मितमनाशनम्॥४१॥

अदृष्टविग्रहायातं वक्त्राद्वक्त्रक्रमागतम्।
हृदयं सर्वदेवीनां योगिनीनां महोदयम्॥४२॥

कर्णात्कर्णोपदेशं वै गुर्वाम्नायोपबृंहितम्।
सारं निर्मथ्य [2]योगेन सप्तस्त्रोतोद्भवं परम्॥४३॥

कोटि कोटि प्रविस्तीर्णं स्वच्छन्दं ज्ञान सागरम्।
स्फुरत्कालानलप्रख्यं कुलकौलक्रमार्णवम्॥४४॥

खेचराद्यणिमाद्यष्टौ लीलया सर्वसिद्धिदम्।
कथय स्वप्रसादेन स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥४५॥

एतच्छ्रुत्वा तु देवेन भैरवेणमहात्मना।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन महात्मना॥४६॥

---

१ प्रयोगानेकबहुलं, ख.।

२ निर्दिश्य, ख.।

परेणाव्यक्तनाथेन दिव्यरूपेण शम्भुना।
परादृष्टिसमायुक्ते भैरवे सर्वबृंहिते।।४७।।

महामुद्रां ततो बद्ध्वा दृष्ट्वा पञ्चामृतं चरुम्।
सुरालिपिशितोपेतं महावामामृतान्वितम्।।४८।।

उभयानन्दजं[१] देवं सर्वामयनिवर्हणम्।
पुनः प्रोवाच सा देवी शक्तिर्या पारमेश्वरी।।४९।।

यस्याद्यन्तमहाज्ञानं न भूतो न भविष्यति।
येन विज्ञातमात्रेण मन्दपुण्योऽपि लीलया।।५०।।

स्वपिण्डे सिद्ध्यतेत्याशु तत्पदं कौलिकान्तिमम्।
कथय स्वप्रसादेन भव भृङ्गचे शवाहन[२]।।५१।।

एवं देव्या मुखोद्गातं श्रुतं[३] वाक्यामृताधिकम्।
हंसगद्गया वाचा प्रहस्योवाच शूलिनम्।।५२।।

सन्दष्टोष्ठपुटं नाथं श्रीकण्ठं ज्ञानबृंहितम्।
अनादिनिधनं देवं सुरासुरनमस्कृतम्।।५३।।

शास्त्रावतरणम्

श्री भैरव उवाच

अहो प्रश्नस्यगाम्भीर्यं न कदाचिन्मया श्रुतम्[४]।।५४।।

कोटि कोटि प्रविस्तीर्णं स्वच्छन्देनावधारितम्।
[५]अकथ्यं परमार्थेन सद्यः प्राणहरान्तिमम्।।५५।।

---

१ जा इति मातृकयोः।

२ कथयस्वप्रसादेन - - - हाम्। क.। कथयस्वप्रसादेन भवभङ्गेषवाहनम्। ख.। उपरितु कल्प्य पठितम्।

३. कृतं, क.।

४. नास्ति। क.।

५. अकथं, क.।

हृदयं सर्वदेवीनां योगिनीनां महोदयम्।
आद्यं हृदयसर्वस्वं स्वपिण्डेभोगमोक्षदम्।।५६।।

कुलकौलैर्महातन्त्रैर्मतयामलसम्भवैः।
सगर्भान्तरगर्भाश्च नित्यकौलक्रमान्तिमैः।।५७।।

षड्विधैर्दर्शनैर्दिव्यैश्चतुर्वेदान्तिमान्वयैः।
विद्यायोगादि तन्त्राद्यैर्मन्त्रयोगादि पीठकैः।।५८।।

मुद्रामण्डलपीठाद्यैरास्तिकानास्तिकैः प्रियैः।
एतैश्चान्यैश्च विविधैरुक्तानुक्तैस्तथा प्रिये।।५९।।

सप्तस्त्रोतोद्भवैर्दिव्यैः स्वच्छन्दे ज्ञानसागरे।
कोटि कोटि प्रविस्तीर्णे भेदानन्तविसर्पितम्।।६०।।

सारं निर्मथ्य योगेन दघ्नो घृतमिवोद्धृतम्।
अल्पशास्त्रार्थ बहुले प्रयोगानेकसङ्कुलम्।।६१।।

सर्वकामार्थ फलदं गहनं ज्ञानसागरम्।
अदृष्टविग्रहायातं पारम्पर्यक्रमोदयम्।।६२।।

सहस्त्रं सम्प्रवक्ष्यामि कामरूपावतारकम्।
न मया कस्यचित्ख्यातं सर्वस्वमिव गोपितम्।।६३।।

व्याधिभक्षेति विख्यातं वृद्धस्वच्छन्दभैरवम्।
सर्वार्थकामफलदं - - - - - - - - - - ।।६४।।

- -।
- - - - - - - सप्तस्त्रोतः क्रमोद्भवात्।।६५।।

महाकौलार्णवे - - - - - - पातालपिङ्गले।
सहस्त्रषट्त्रिंशमतसर्वस्वं प्रकटीकृतम्।।६६।।

वक्त्रागमं तु देवीनां मर्मभेदमनुत्तमम्।
यस्याद्यन्ते परं चान्यं न भूतं न भविष्यति।।६७।।

तत्पदं ते प्रवक्ष्यामि न चैवान्यस्य कस्यचित्।
एकान्ते तव सुश्रोणि ह्येकान्ते कथयामि ते।।६८।।

ध्यान धारण निर्मुक्तं जपहोम विवर्जितम्।
तर्कवाग्जालरहितं क्लेशायास बहिष्कृतम्।।६९।।

कालवेला विनिर्मुक्तं क्रियाचर्याव्रतोज्झितम्।
सिद्धसाध्यविनिर्मुक्तं सुसिद्धं सर्वसिद्धिदम्।।७०।।

परं नित्योदितं धाम उदयास्तविवर्जितम्[१]।
आद्यं श्रीकौलिकं भेदसन्धानं ज्ञानसागरम्।।७१।।

प्रवक्ष्यामि यथा तथ्यमयं भैरवडामरम्।
स्वस्वभावं स्वधामस्थं भूरिकालानलोपमम्।।७२।।

सर्वार्थफलदं दिव्यं सस्फुरन्तमकीलितम्।
कौलस्वच्छन्दनाथेति विख्यातं चान्तिमं क्रमम्।।७३।।

खेचरीणां मुखाम्नायं योगिनीनां[२] गृहे गृहे।
संस्थितं सर्वसिद्धीनां क्रमात् सिद्धावतारितम्।।७४।।

कृतौ खगेन्द्र पादैश्च त्रेतायां - - - पादयोः।
द्वापरे मीन पादैश्च श्रीस्वच्छन्दैः कलिर्युगे।।७५।।

वृद्धस्वच्छन्दनाथस्य कौलनाथेश्वरस्य च।
अवतारस्तु कथितः वर्णिता मे युगे युगे।।७६।।

---

१ 'धाममुदयास्तमवर्ज़ितम्'। इति क. ख.।

२ योगिनां, क.।

गोपनीयमिदं भेदं चौरेभ्यो द्रविणं यथा।
अगोप्या भृयतेत्याशु साक्षादपि पिनाकभृत्।।७७।।

मुक्तात्मा मन्दपुण्योऽपि स्वपिण्डे सिद्धिमाप्नुयत्।
इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।।७८।।

।। इति महाकौलागमे पातालपिङ्गलान्तरखण्डविर्निर्गते
श्री वृद्धस्वच्छन्दकौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे प्रथमः पटलः।।

॥ द्वितीयः पटलः ॥

अथ वृद्धनाथहृदयविधानम्

ॐ श्री भैरव उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यदुक्तं दिव्यरूपिणा।
हृदयं देवदेवस्य बृद्धनाथस्य सुव्रते॥१॥

शतकोटिस्तु मन्त्राणां राजराजेश्वरं परम्।
मूलमुख्यतरं दिव्यं स्वस्वभावं सदोदितम्॥२॥

मूलमन्त्रं प्रवक्ष्यामि स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
एकान्ते विजने रम्ये सर्वद्वन्द्वविवर्जिते॥३॥

साधनभूमि निर्देशः

एक लिङ्गे श्मशाने वा पर्वताग्रेऽथ सङ्गमे।
भूगृहे स्वगृहे[1] वापि द्विजमण्डलवेश्मनि॥४॥

अटव्यां निर्जने वाथ यत्र वा रोचते मनः।
स्वगुप्तानसने स्थाने मृद्गोमयसुलेपिते॥५॥

चित्रभित्ति समायुक्ते वितानोपरिशोभिते।
पुष्पप्रकरसङ्कीर्णे धूपामोदवहे शुचौ॥६॥

देवतायतने वाथ शून्ये वाथ शवालये।
अन्यस्थानेऽथवा भीमे महालक्ष्मीवनान्तरे॥७॥

साधनभूमिसंस्कारकथनम्

कङ्कालवसुधां घृष्टां महाकङ्काल (द?) र्पिताम्।
कृत्वा पूर्वं ततः पश्चात् सुरालिमहिते शुभे॥८॥

---

१. 'स्वगृहे' इति क. मातृकायां नास्ति।

स्वयम्भूकुसुमोपेते उभयानन्दजान्विते।
कर्पूरागुरुसंयुक्ते मृगजामलयान्विते॥९॥

सिन्दूर कुङ्कुमोपेते - - - - - तोत्तमे।
सर्वाङ्गेषु समारब्धमापादतलमस्तकम्॥१०॥

तेनैव लेपिते सर्वं भूतले सर्वकामदम्।
तदलाभेऽथ सुभगे शिवाम्बसहितासने॥११॥

साधकस्वरूप निर्देशः

उपलिप्य समालभ्य कौलोक्तविधिनाप्रिये।
[1]कज्जलाञ्जितनेत्रस्तु ललाटे तिलकाङ्कितः॥१२॥

वीरो वा देशिकश्रेष्ठो खेटिकाकारभूषितः।
मदिरानन्दचैतन्यो वीरविग्रहसंस्थितः॥१३॥

मातृकाप्रस्तरविधिः

रक्तश्वेताम्बरो वापि कृष्णपीताम्बरोऽपि वा।
सुतृप्तस्तु मुदायुक्तो प्रस्तरेन्मातृकां पराम्॥१४॥

पञ्चाशद्वर्ण रचितां मन्त्रमातां जगाम्बिकाम्।
आदि षोडशभेदेन साक्षाद्वै भैरवः स्मृतः॥१५॥

भैरवी कादिना पूज्या सप्तवर्गापराम्बिका[2]।
ह्रीं ह्रूं द्वौ तृतीयो नैव गन्धौषधि विलेपनैः॥१६॥

मातृकार्चनम्

पूर्वोक्तैः कौलिकैर्द्रव्यै[3]र्महापञ्चामृतान्वितैः।
सुरालिपिशितोपेतैर्जानुभ्यामवनिं गतः॥१७॥

---

१. 'कज्जलत्रिन्दत', क.। 'कज्जलार्जितृत', ख.।
२. पा.टि. २ वत्।
३. भर्क्ष्यैः, ख.।

अर्चयेन्मातृकां दिव्यां कर्मणामनसा गिरा।
महातैलोत्तमे दिव्ये रक्तवर्तिसमन्विताम्।।१८।।

सप्तभिर्दीपिकां दद्यात् त्रिभिश्चैकमथापि वा।
अलाभाद् गन्धतैलेन कर्पूराक्तेऽथवा घृते।।१९।।

भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्च ह्यधमैर्मध्यमोत्तमैः।
नैवेद्यैर्विविधाकारैः स्थलजैर्जलजोद्भवैः।।२०।।

अण्डजैः स्वेदजैश्चैव ह्युद्भिज्जैश्च जरायुजैः।
पूजयेद्विविधैर्मांसै[1] रुक्तानुक्तैश्चराचरैः।।२१।।

खेचरीमुद्रानिर्देशः

महामुद्रां ततो बध्वा नाम्ना वै खेचरीति सा।
पानमुद्रा तु विख्याता योगिनी भोगमोक्षदा।।२२।।

शिव शक्तिमया दिव्या गुर्वाम्नायक्रमे स्थिता।
सिद्धिदा साधकेन्द्राणां खेचरी (पिण्ड सं)[2] स्थिता।।२३।।

सकृत् स्मृत्वा तु सा मुद्रा शिवशक्त्या तु देवता।
सुतृप्ता सिद्धिदा सर्वा सर्वकाम विभूतिदा।।२४।।

मन्त्रोद्धारक्रमः

भवन्ति साधकेन्द्राणां विद्याः प्रमुदिताम्बिका।
तत्रोद्धरेन्महामन्त्रं पुष्पधूपोपहारकैः।।२५।।

अर्चयित्वा विधानेन सर्वमन्त्रात्मभक्षकम्।
द्विधा भेदेन वक्ष्यामि कर्णान्ते खेटिकागमे।।२६।।

सर्वगं सर्वगान्तस्थं सर्वशान्ताद्य भूषितम्।
सर्वगाश्चतुरोपेतं प्रथमं सर्वगं पुनः।।२७।।

---

१. ग्रासै, ख.।
२. 'परमास्मृता' लिपिकारेण कल्प्य लिखितं ख. मातृकापार्श्वे।

सर्वगात्षष्ठमारूढं सर्वशान्ताद्यभूषितम्।
सविसर्गं पुनः रुद्रे सर्वगान्तात्तृतीयकम्।।२८।।

सर्वशाद्यं तथा खान्तं भ्रूलताशिरसान्वितम्।
[1]योग्ये शरसमायुक्तं कार्थकं गोपनः प्रिये।।२९।।

स्ववेशममहितं वह्नि कालाभ्यामनुजान्वितम्।
ॐ [2]युतं घोर घोरश्च तरेभ्यः[3] सृष्टि संयुतः।।३०।।

पीयूषं सर्वगाद्यं तु विषसंरुषितं मया।
वह्निवरुणसंयुक्तं थाद्यं सर्पपदं परम्।।३१।।

सर्वेभ्यश्च ततः पश्चान्नमस्ते रुद्रमेव च।
रूपेभ्यश्च अहं भद्रे सविकामं समुद्धरेत्।।३२।।

मन्त्रप्रयोगविधिः

अष्टात्रिंशाक्षरं ह्येष अघोरः सुरपूजितः।
नमः प्रवचनं चास्य साधकानां जपार्चने।।३३।।

साङ्गषट्कं भवेच्चास्य नाह्वानं न विसर्जनम्।
न ध्यानं नोपवासञ्च न यमो न च वै क्रियाः।।३४।।

केवलं कल्पनामात्रं पराभक्ति युता यदा।
अर्चयन्ति तदादेवं बृद्धनाथं जगद्गुरुम्।।३५।।

अघोरध्यानम्

चिद्रूपं चित्कलाकारं स्वच्छन्दं सर्वबृंहितम्।
सर्वदुःखप्रशमनं व्याधिभक्षं नि(रञ्जनम्)[4]।।३६।।

---

१. योग्येसर, ख.।
२. शतं, क.।
३. घोरघोरश्चरेभ्यः, क.।
४. कल्प्यलिखितम्। मातृकयोर्नास्ति।

([1]जपार्च) न विधानेन यत् स्तुतास्तु न सा तथा।
तेषां जन्मजराव्याधिर्न भूयः मूलसङ्गताः[2]।।३७।।

खेटिकान्ते मया ख्याते कर्णान्ते च अतः शृणु।

अपरः अघोरमन्त्रः

हं हं क्षः अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरतरेभ्यश्च।।३८।।

सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः।
अं हंसः वर्णास्ततः एषोऽसौ परमं धाम जीवात्मा
जीवरूपिणम्।।३९।।

देवताध्यानम्

सोमार्काग्निकलान्तस्थं स्वस्वभावं सदर्चितम्[3]।
दीप्तकालानलप्रख्यं भूरिकोटचग्निसन्निभम्।।४०।।

अनिर्वार्यमसंहार्यं सस्फुरन्तमकीलितम्।
दुर्निरीक्ष्यं महद्घोरमघोरं भयनाशनम्।।४१।।

अमोघफलदं नाथं साक्षाद्भैरवभास्करम्।
एष यज्ञवराहं च नारसिंहं च भैरवम्।।४२।।

बोधेशं लोकनाथं वै सर्वसत्त्वानुकम्पनम्[4]।।
सर्वतत्त्वक्षयकरं रुद्रं कालाग्निभैरवम्।।४३।।

सर्वशक्त्युद्भवं हीशमजवक्त्रमनामयम्।
नादिहान्तं पदाधारं खात्मा कादिभानुगम्[5]।।४४।।

---

१. मातृकयोः खण्डितः स्थलः।

२. प्रशमङ्गताः, क.।

३. सदोदितं, क. खस्य पार्श्वेऽपि।

४. सर्वसन्चत्वकम्पनं, क.।

५. भादुरम्, क.।

महामायामयं शम्भुं सर्वज्ञं सर्वबृंहितम्।
सर्वसत्त्वान्तरास्थं सर्वावस्थान्तरोदितम्॥४५॥

सर्वतत्त्वयुतं[1] धाम कुलमार्ताण्डभैरवम्।
अस्मिन् कौलागमे ख्यातं स्वशक्तिकिरणोज्वलम्॥४६॥

फलश्रुतिः

कुलकौलैस्तथाऽतोऽन्तर्मतैर्यामलसम्भवैः।
शाक्तैश्च शाम्भवैश्चैव चतुर्वेदक्रमान्वयैः॥४७॥

षड्विधैर्दर्शनवरैः सगर्भान्तरगर्भकैः।
एव माद्यैरनेकैश्च पुरादेवेनशम्भुना॥४८॥

दृष्ट्वा तु सस्फुरं मन्त्रं सदेवासुरमानुषम्।
तं ज्ञात्वा - - - - - - - - - - - - - ॥४९॥

- - - - - - - - - देवाग्नि गुरुदूषकाः।
तदा वै कीलितं मन्त्रं कृतवीर्य - - कम[2]दारितम्॥५०॥

- - निस्फुरं कृत्वां कुलकौल - - - - - ।
- - - - - जननं रोग सन्तापवर्धनम्॥५१॥

सर्वामयप्रदं पुंसां विपरीतं प्रकाशितम्।
तत्र भक्तास्तु ये वीराः सदेवासुरमानवाः॥५२॥

न जानन्ति यदा दिव्यं मन्त्रराजमकीलितम्।
तदा ते पशवो देवा भुक्तिमुक्तिविवर्जिताः॥५३॥

वृथा परिश्रमं तेषां पूजा ध्यानं नुतिं जपम्।
निरर्थं व्रजते सर्वं जन्मकोटच्ययुतार्जितम्॥५४॥

---

१. सर्वतत्त्वाहरं, क.।
२. ख. मातृकायामेव।

अस्मिन् कौलागमे दिव्ये सस्फुरन्तमदारितम्।
उत्कीलितं महादीप्तं षडध्वायासघस्मरम्[१] ॥५५॥

भूरिकालानलप्रख्यं मया तेऽत्र[२] प्रकाशितम्।
[३]सर्वाधिकार फलदं सर्वकामविभूतिदम् ॥५६॥

दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वपाप[४] निबर्हणम्[५]।
आद्यं हृदय सर्वस्वं खेचराद्याणिमाप्रदम् ॥५७॥

स्वयम्भूसर्वगं नाथमलक्ष्मितमनाशनम्।
सर्वव्याधिहरानन्तं स्थित्युत्पत्तिलयङ्करम् ॥५८॥

भीमवक्त्रं कपालेशं निष्कलं सकलं विभुम्।
शतकोटिस्तु मन्त्राणा[६]मस्यामवगतं सदा ॥५९॥

तासां प्रदीपको ह्येष जीवात्मा सर्वबृंहितः।
यस्येशं तिष्ठते देशे सरुद्रो भैरवः स्वयम् ॥६०॥

तस्य पादरजो धूलिं वन्दयन्ति दिवौकसाम्।
मन्त्रास्तु किङ्करास्तस्य सचेटपरिवारकाः ॥६१॥

ब्रह्मविष्ण्वीशरुद्राद्यासदेवासुरमानुषाः।
शुष्काद्याः मातरः सर्वा महालक्ष्म्यादि देवताः ॥६२॥

आनन्दभैरवाद्यादि शाम्भ - - - - योगिनी।
आब्रह्मादि शिवान्तान्तं यावदव्यक्तगोचरम् ॥६३॥

---

१. त्रुटितः पाठः, क.।
२. तेऽद्य, ख.।
३. नास्ति, क.।
४. नास्ति, क.।
५. खेचराद्याणिमाष्टदम्, ख.।
६. ०र्णाव, क.।

वशगाः साधकेन्द्रस्य मन्त्रानाथप्रसादतः।
ददान्ति चेप्सितान्कामानधमान्मध्यमोत्तमान्।।६४।।

येन रुद्रांशकौ जातौ यस्य मुक्ति - - - देहभृत्।
यस्य नापश्चिमं जन्म स्वयं वा यो न भैरवः।।६५।।

यस्य नानेन देहेन पिण्डसिद्धिर्न जायते।
[1]नासौ प्राप्नोति परमं मन्त्रनाथमकीलितम्।।६६।।

कुल कौलेषु ये भक्ताः नित्यानां ये उपासकाः।
[2]मत यामलतन्त्रैश्च षड्विधैर्दर्शनैस्तथा।।६७।।

न जानन्ति यदा नित्यमष्टात्रिंशाक्षरं परम्।
तदा ते पशवः सर्वे भुक्तिमुक्तिविवर्जिताः।।६८।।

न सिद्ध्यन्ति न मुच्यन्ति पक्षहीना खगास्तु ते।
वृथा परिश्रमं तेषां शिरश्छिन्नास्तु ते जनाः।।६९।।

न सिद्ध्यन्ति ते मन्त्राः स्व(यं) विस्फुरिताश्च ये।
भीता दग्धाश्च छिन्ना ये विमुखाः सम्मुखाश्च[3] ये।।७०।।

निर्जीवा वीर्यरहिताः समस्तध्वस्तचेतसः।
उक्तानुक्तान्यनेकाश्च ह्यागमानागमैः स्थिताः।।७१।।

तेषां वै दीपिका ह्येष जीवभूतः सदोदितः।
अस्याद्यबीजे ये मन्त्राः दीपिताः सर्वकामदाः।।७२।।

भवन्ति साधकेन्द्राणां स्वपिण्डे भोगमोक्षदाः।
इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।।७३।।

---

१. नाशो, क.।
२. स तया सर्वतन्त्रैश्च, क.।
३. मन्मुखा, क.।

यत्रेशं जपते नित्यं मन्त्रास्तत्र पराङ्मुखाः।
तिष्ठन्ति दासवद्दीनाः साधकानां वरप्रदाः।।७४।।

यद्यपि देवदेवेशं साक्षादपि जगद्गुरुम्।
जिह्वाशतसहस्रेण कोटि कोटि मुखेरिता।।७५।।

प्रभावं बृद्धनाथस्य - - - - - - - - - - -।
किम्पुनस्तु वयं भद्रे पञ्चस्रोतोऽल्पमेधसः।।७६।।

कल्पकोटि शतैर्वापि न समर्थाः प्रशंसितुम्।
ईदृशेशं परं मन्त्रं भैरवं सर्वमोहितम्।।७७।।

आद्यं हृदय सर्वस्वं त्वत्प्रीत्या प्रकटीकृतम्।
अद्योत्सङ्गगता देवी शक्तिर्या पारमेश्वरी।।७८।।

अथ बृद्धकालीस्वरूपम्

परानित्योदितानन्ता बृद्धकालीति विश्रुता।
घोरा करङ्किणी भीमा कालसङ्कर्षणान्तिमा।।७९।।

सप्तादशीति परमा कला कङ्कालभैरवी।
कटाहखर्परं यस्य भूरिब्रह्माण्ड पूरितम्।।८०।।

ग्रासैकलीलया भद्रे गृहीतमिव कार्मुकम्[१]।
यस्य ब्रह्मोत्तमे कोष्ठे सा शवान्तेऽद्वितीयकम्।।८१।।

तदन्ताकाश संलीनमिदं विश्वं चराचरम्।
यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयम्।।८२।।

प्राणापान प्रवाहेण यस्या यं स चराचरम्।
आब्रह्म भुवनं सर्वं यावदव्यक्तगोचरम्।।८३।।

---

१. गृहीतमिवकन्दुकम्, ख.।

भूरिकोटि ह्यसंख्याता सङ्कट्टविवरान्तरे।
दिग्व्योम्नि कुलसञ्चारे निर्गच्छन्ति विशन्ति च॥८४॥

शान्तिमेषा पराकाली घोरकृष्णाञ्जनप्रभा।
[1]बृद्धस्वच्छन्दनाथस्य वल्लभोत्सङ्गगामिनी॥८५॥

पञ्च षड्भिस्तु कोटीनां काली सप्तादशाक्षरी।
सा स्थिता मूलजादेवी राजराजेश्वरीन्तिमा॥८६॥

सप्तादशाक्षरी प्रख्या खेचरीणां मुखे स्थिता।
मतयामलतन्त्रादि कुलकौलैश्च गोपिता॥८७॥

वक्त्रागमे च देवीनां पारम्पर्यक्रमे स्थिता।
आद्याप्यनमया प्राप्ता सत्यांशी अथ वल्लभा॥८८॥

पूजनीयासदादेवी भैरवोत्सङ्गागामिनी।
सिद्धिदा साधकेन्द्राणां सर्वकामविभूतिदा॥८९॥

त्र्यक्षराकथिताविद्या न रुद्रो लभते स्फुटा।
कालसंङ्कीर्षिणी रौद्रा स्वपिण्डे भोगमोक्षदा॥९०॥

इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा॥९१॥

॥ इति श्री महाकौलागमे पातालपिङ्गले षट्त्रिंशत्सहस्त्रसंहितायां द्वादशसहस्त्र-खण्डविर्निर्गते श्रीकामरूपावतारे सर्वशास्त्रविनिर्णये बृद्धस्वच्छन्दे महाकौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे द्वितीयः पटलः॥

---

१. श्लो. ८४ उत्तरार्धं, श्लो. ८५, च ख मातृकायामेव स्तः।

॥ तृतीयः पटलः ॥

राजराजेश्वरी विद्याजिज्ञासा

श्री देव्युवाच

अहं कवाट[1]बुद्धिस्त्वं मन्दभाग्या अहोऽपि वा।
निर्दयो निरपेक्षस्त्वं सर्वस्व ज्ञानवञ्चकः॥१॥

स्फुटं न कथ्यसे ज्ञानं वञ्चिताहं त्वया प्रभो।
स्वस्वभावमया दीप्ता शक्तिर्या पारमेश्वरी॥२॥

परानित्योदितानन्ता कौली सप्तादशीकला।
सप्तादशाक्षरी देवी मूलमुख्यान्तरान्तिमा॥३॥

पञ्चाषड्भिस्तु कोटीनां शाक्तां सङ्कर्षभेदकाम्।
राजराजेश्वरीं विद्यां सस्फुरन्तामकीलिताम्॥४॥

किमर्थं गोपितानाथ कथयस्व कपालभृत्॥५॥

राजराजेश्वरी विद्यावतरणोपक्रमः

श्री भैरव उवाच

दिव्यवर्षायुतं पूर्वं पञ्चाग्निवटमध्यतः।
चन्द्रद्वीपपुरे रम्ये महालक्ष्मिवनान्तरे॥६॥

महाव्रतधरो भूत्वा दिव्याक्षेण मयानघे।
स्वदेहो - - मासं मया पूर्वं तपः कृतम्॥७॥

आराधित अजः शम्भुः दिव्यरूपः जगद्गुरुः[2]।
तथापि न मया प्राप्ता विद्या कमललोचने॥८॥

---

१. कर्वाट, ख.।

२. सर्वत्र द्वितीया प्रयोगः मातृकयोः।

इति सत्यं महेशानि समयं पारमेश्वरम्।
नाहं जानाम्यहं भद्रे मुख्यां सप्तदशीं कलाम्[1]।।९।।

त्वत्तः[2] गुप्ततरं किञ्चिन्नास्ति सत्यं ब्रवीमि ते।
एतच्छ्रुत्वा तु वै देवी[3] सास्रपूर्णाकुलेक्षणा।।१०।।

उत्सङ्गादवतीर्णा तु पादौ जग्राह भैरवी।
हंसगद्गदया वाचा पुनः प्रोवाच भैरवी।।११।।

श्री भैरव्युवाच

अहो कष्टतरस्त्वं हि मन्दभाग्याह्यहं प्रभो।
कथ्यते समयं सत्यं भूयः सत्यं कृतं क्षितौ[4]।।१२।।

त्वमेव समयः पुंसां सत्यासत्ये त्वमेव हि।
धर्माधर्मादि सर्वस्त्वं पुण्यापुण्यान्तरास्थितिः।।१३।।

त्वमेव सर्वशो नाथो धर्माधमैः क्व लिप्यते।
पुण्य पापादिभिर्भवैस्त्वमेकः कोऽत्र ते विभो।।१४।।

कस्य वा ते तपः घोरं कृतं केवैभिरक्षितम्।
त्वमेव सर्वतत्त्वानां सोमार्काग्निकलान्तगः।।१५।।

वह्निर्विंशत्कलान्तस्थं जीवार्कः सर्वबृंहितः।
त्वं होता हुतभुक्कालो त्वं हि पूज्यस्तु पूजकः।।१६।।

त्वमेव विश्वरूपेण भावाभावान्तरस्थितः।
स्वर्गादिनरकैर्घोरैस्त्वं - - - - सदा।।१७।।

त्वया सर्वमिदं व्याप्तं सूत्रे मणिगणा इव।
आदित्यस्य यथा रश्मिरम्बरे तु यथानिलः।।१८।।

---

१. मुख्या सप्तदशीकलेति प्रथमान्तः पाठः, क. ख. उभयत्र।

२. तद् - क. त्वत्तद् - ख.।

३. देव्या क. ख.।

४. प्रभो - क.।

जले वह्निस्तिले तैलं क्षीरे सर्षिस्तले जलम्।
अभिन्ने चरते सर्वं तथाऽहं त्वत्कुलान्तरे।।१९।।

चराम्यलक्षिता नित्यं त्वदीय चरितं प्रभो।
[1]यस्मिन्नित्यं परं सत्यं तत्किमर्थं पराकलाम्[2]।।२०।।

सप्तादशाक्षरीं विद्यां ज्ञात्वा न प्रतिपद्यसे।
न प्रकाशी कृताऽद्यापि त्वया (मत्तोऽपि) गोपिता।।२१।।

कथयस्त्व प्रसादेन मा खेद्यं स्त्रीदया परः।
एतच्छुत्वा तु वै देव्याः[3] प्रश्नान्तं मर्मभेदकृत्।।२२।।

ईषत्प्रहृष्टवदनामी(ष) त्क्रोधेनमूर्च्छिताम्।
ईषत्प्रहसितं वदनं कृत्वा प्रोवाच शूलिनीम्।।२३।।

सप्तदशाक्षरीविद्याकथनम्

श्री भैरव उवाच—

न त्वं विद्याः कटु भद्रे तूष्णीमास्थाय तिष्ठसु।
भविष्यति तदा काले मया तुष्टेन सुव्रते।।२४।।

गते स लक्षये घोरे विद्यार्हा त्वं भविष्यसि।
एतच्छुत्वा तु वै देवदेव्या भैरवभाषितम्।।२५।।

जग्राह रोदमाना सा चरणौ भैरवस्य च।
इममाह जगन्माता ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणा।।२६।।

दीना मन्त्रसुमनसा मग्ना शोकानलार्णवे।
प्रोवाच फुल्लनयना प्रणिपत्यजगद्गुरुम्।।२७।।

---

१. वच्मि, ख.।
२. कला, क.।
३. देवीः, क. ख.।

श्री भैरव्युवाच

किमुपायन्तु मे नाथ देव खण्डेन्दुशेखर।
घोर संसारमतुलं दुस्तरेऽस्मिन्भवार्णवे॥२८॥

पतितादायिताऽहं ते ह्यज्ञान तिमिरावृता।
[1]उद्धृता त्वत्प्रसादेन भवामि तव वल्लभा॥२९॥

कथयस्व परां विद्यां दशसप्तार्ण मूलतः।
- - - - - - दशसप्ताक्षरान्तिमा॥३०॥

आत्मना तेन कं सत्यं करिष्यामि हुताशनम्।
ततस्तुष्टेन सहसा भैरवेण महात्मना॥३१॥

करयुग्मेन संगृह्य उत्सङ्गे विनिवेशिता।
त्रिस्संघट्टपदे व्योम्नि ह्याब्रह्मादिशिवान्तकम्॥३२॥

मनः कार्मुकमाकृष्य ब्रह्मनिर्वाणसायके।
सहसा शाम्भवे योगे करणे खेचरीश्वरी॥३३॥

सर्वतत्त्वैकसंरुह्यमन्त्र्यमन्त्रात्मचैकतः।
परदेहे पराशक्तिक्रोधनाद्देवि कौलवित्॥३४॥

ज्ञानसङ्क्रामयोगेन प्रविश्याधारमण्डले।
एकैकं तु परं तत्त्वं भेदयित्वानसेन तु॥३५॥

सोपानपदपङ्क्त्यैव शक्तिं निष्क्राम्य चापरे।
पराश्रीबिन्दुनिलयैर्ब्रह्मनिर्वाण गोचरे॥३६॥

[2]अनेन क्रमयोगेन आज्ञया वीरवन्दिते।
वेदयित्वा तु सा देवी भैरवेण महात्मना॥३७॥

---

१. 'उद्धारस्त्व - -', क. ख.।
२. अपक्रम, क.।

ज्ञानसङ्क्रमणं कृत्वा धर्माधमैर्विमोक्षिता।
बध्वा तु खेचरीमुद्रा प्राश्य पञ्चामृतं चरुम्।।३८।।

प्रोवाच भगवान्देवो हंसगद्गदया गिरा।
पीतं वरासवं दिव्यं भैरव्या भैरवेण च।।३९।।

श्री भैरव उवाच

किं ते प्रयोजनं भद्रे विषाग्निर्वेदनेन किम्।
दाहमारणशक्त्याद्यैर्देवि नित्योदिते प्रिये।।४०।।

अकथ्या [1]परमार्थेन सद्यः प्राणहरान्तिमा।
तथापि कथयिष्यामि यत्तेदिव्यं मनेप्सितम्।।४१।।

त्वत्प्रीत्या नात्र सन्देहो - - - वरवर्णिनि।
पञ्चाशद्भिस्तु ताः कोट्यो भेदा साङ्कर्षिणी त्रिधा।।४२।।

तेषां वै मूलजा ह्येषा राजराजेश्वरे त्विमा।
अदृष्टविग्रहायाता योगिनीनां मुखे स्थिता।।४३।।

गुरुवक्त्रोपदेशा सा बृद्धनाथस्य वल्लभा।
ध्यानधारणनिर्मुक्ता जपहोमबहिष्कृता।।४४।।

क्लेशायासैः सदा हीना अरिसाध्यपदोज्झिता।
सुसिद्धसिद्धिदा दीप्ता भूरिकालानलोदिता।।४५।।

व्रतचर्यादिरहिता भवभावक्षयङ्करी।
द्विधा भेदेन बद्ध्वापि कर्णान्ते खेटिकागमे।।४६।।

मन्त्रोद्धारः

शून्यं वह्निमदारूढं सप्तविन्दु शिरान्वितम्।
नादविन्दुकलायुक्तं लभते योगिनी सुतम्।।४७।।

---

१. परमार्थेऽर्थे, क.।

वान्तं यान्तासनारूढं मयानङ्गकलान्वितम्।
द्वितीयं कथितं बीजं विश्वैश्वर्यफलप्रदम्॥४८॥

नावं नीला[1]स्वरारूढं व्यापकेन विभूषितम्।
नादविन्दुकलोपेतं सृष्टिसंहारकारकम्॥४९॥

तृतीयं कथितं बीजं मायानङ्गकलान्वितम्।
चतुर्थं कथितं बीजं त्रैलोक्य क्षोभकारकम्॥५०॥

सविसर्गस्तु कालाग्निस्तप्यान्यं निष्कलं शिवम्।
सविसर्गं तु पीयूषं सप्तमं कथितं मया॥५१॥

काद्यं यान्तासनारूढं मायाबिन्दुकलान्वितम्।
क्रोधासनस्थितं कृत्वा सविसर्गं समुद्धरेत्॥५२॥

सबिन्दुं द्विजराड्भद्रे सृष्टियुक्तं द्वितीयकम्।
हान्तयुग्मे ततोद्धृत्य मायानङ्गकलान्वितम्॥५३॥

तद्वत्सङ्कोच युग्मं वै सविन्दुकलयान्वितम्।
स्वच्छन्दं सृष्टि सहितमुद्धरेत्सर्वबृंहितम्॥५४॥

क्रमान्नित्योदिताह्येषा उदयास्तमवर्जितम्।
कलासप्तादशीविद्या - - - ष्टमयावृता॥५५॥

मन्त्रमाहात्म्यम्

खेटिकैस्तु मयाख्याता कर्णान्ते च (मया प्रिये)॥५६॥

एषा सा नमया देवी भैरवी सर्वबृंहिता।
अनादिनिधना व्यक्ता शक्तिर्यापारमेश्वरी॥५७॥

नैवास्य दीपिका देया न नतिः[2] पादसेवया।
न जातिर्नाङ्गषट्कं वै होमान्तं नैव पार्वति॥५८॥

---

१. नीलाम्भरारूढं, ख.।
२. नतिर्पाद - ख.।

दीपनास्तु वरारोहे रुद्रस्यापि गणाम्बिके।
पिण्डपातं भवेत्याशु इत्याज्ञापारमेश्वरी॥५९॥

शतकोटिस्तु मन्त्राणां शक्ति कौले[1] परापराम्।
एषा वै जननी प्रोक्ता स्थितिर्विलयकारिणी॥६०॥

एषा वै दीक्षा[2] ह्येषा अस्यासनगता स्तुता।
यस्य सा तिष्ठते देहे य रुद्रो भैरवस्स्वयम्॥६१॥

तस्य पादरजो धूलि वरं वान्ति दिवौकसाम्॥६२॥

मन्त्रास्तु किंकरास्तस्य सर्वे तापनिवारकाः।
ब्रह्मविष्णेशरुद्राणां सर्वसत्त्वाश्चराचराः॥६३॥

आब्रह्मादि शिवान्तान्तं यावदव्यक्तगोचरम्।
सर्वे ते वशगा भद्रे साधकस्य वरप्रदाः॥६४॥

ददन्ति चेप्सितान्कामान्नधमान्मध्यमोत्तमान्।
येन रुद्राङ्गको[3] जातो यस्य भृक्तिर्न देहमुत्॥६५॥

यस्य नापश्चिमं[4] जन्म स्वयं यो वा न भैरवः।
तस्य[5] वा नेन देहेन पिण्डसिद्धिर्न जायते॥६६॥

नासौ प्राप्नोति परमा मूलविद्यामकीलिताम्।
विद्यते परमान्त्या न न भूतो न भविष्यति॥६७॥

कुल कौलागमैस्तन्त्रैर्मतयामलसम्भवैः।
षड्विधैर्दर्शन[6]वरैश्चतुर्वेदक्रमान्वयैः॥६८॥

---

१. कौलो पतापराम्, ख.। पार्श्वे च 'परा' इत्यपि पाठः दत्तः लिपिकेन।
२. दीपिका, ख.।
३. रुद्रार्थको, क.।
४. नासत्विमं, क. ख.।
५. यस्य, क. ख.।
६. षड्विधैर्मन्त्रवरै०, क.।

गोपिता नोदिता ह्येषा सस्फुरन्ता अकीलिता।
तेषां भक्तास्तु ये वीरा सदेवासुरमानुषाः।।६९।।

अस्यापि पशवस्ते वै शिरश्छिन्नास्तु ते स्मृताः।
न सिद्ध्यन्ति न मुच्यन्ति कल्पकोटिशतैरपि।।७०।।

सिद्धयोगेश्वरी तन्त्रे महालक्ष्मीमतैस्तथा।
सङ्कर्षिणीकुले घोरे तथा मन्थानभैरवे।।७१।।

जयद्रथे तथोच्छुष्मे समैश्च विषमैस्तथा।
महासम्मोहनी तन्त्रे अद्वैते[1] ब्रह्मयामले।।७२।।

हड्डामते [2]मते विन्ध्या तथा श्री रुद्रयामले।
पिचु तन्त्रे त्रिशीर्षाख्ये लाकुले तु महाकुले।।७३।।

विश्वरूपमते घोरे ऊर्ध्वस्त्रोते कुलार्णवे।
तोत्तले लम्पटाद्ये तु वानसूया तु डामरे।।७४।।

रुरुभेदे महाघोरे तथा श्रीसाधने कुले।
पम्पाखण्डे अयोध्याख्ये देव्याख्ये यामले [3]तथा।।७५।।

महासारस्वते मते सिद्धकौले तु गह्वरे।
मालिनी विजये तन्त्रे मातृरो[4]हत हेरुके।।७६।।

नारसिंहमते घोरे तथा श्रीविष्णुयामले।
[5]भौमहस्ते तथा नन्दे महास्वच्छन्दकौलिके।।७७।।

१. अद्वैत, क.।
२. 'मते' इत्यारम्य 'लाकुले तु' इत्यन्तः ख. मातृकापाठः।
३. यामलैस्तथा, क. ख.।
४. मान्दरेदत, क.।
५. भोम्र, क.।

ऋक्षकालीमते चैव तथा स्वायम्भुकौलिके।
शुष्कामते तु झङ्कारे[१] बौद्धे सौरे च वैष्णवे।।७८।।

शाक्ते च शाम्भवे चैव आरहन्तैवमादिभिः।
मुद्रामण्डलपीठाद्यैस्तन्त्रयोगादि पीठकैः।।७९।।

एवमाद्यादिभिः पीठैरेव[२]मन्यैरनेकशः।
- - - - - - - - - - चोत्तरान्वये।।८०।।

एवमाद्यैरनेकैश्च उक्तानुक्तैर्वरानने।
बहुभेदेस्स्मृताह्येषा विद्यासप्तदशाक्षरी।।८१।।

क्वचिद्वै कीलिता क्वचिन्नैवमकीलिता।
क्वचिद्वै दारिता प्रोक्ता हृतवीर्या निरक्षरा[३]।।८२।।

अस्मिन्कौलागमे ख्याता सस्फुरन्ता अकीलिता।
मूला मुख्यतरा दीप्ता यादृशी दिव्यतेजसा।।८३।।

तादृशाद्यैः कुलैः कौलैर्न भूतो न भविष्यति।
राजराजेश्वरी भीमा स्वस्वभावा स्वरोदिता।।८४।।

यस्याद्यन्ते परादीप्ता तत्सामान्या न विद्यते।
तत् पदं कथितं तुभ्यमन्यं नान्यस्य कस्यचित्।।८५।।

मन्त्रभेदकथनम्

द्वात्रिंशो मन्त्र राजानो उभयोश्शाक्तशाम्भवौ।
धामत्रयपदान्तस्थां त्रिसङ्घट्टपदोज्झिताम्।।८६।।

---

१. जाक्कारे, क.।
२. व्यैः, ख.।
३. न्विरक्षकाः, क.।

त्रितत्त्व भासकौ दीप्तौ [1]त्रिशून्यविवरालये।
नादत्रयपदाधारौ[2] सूर्यमण्डलभेदिनौ[3]।।८७।।

अस्य त्रिंशाक्षरा घोरा कालीपञ्चदशाक्षरा।
तुल्यमेतन्मयाख्यातं युग्मं ते परमेश्वरम्।।८८।।

श्रीमन्त्रौ[4] न कुले जातौ रुद्रांशौ योगिनीसुतः।
शक्तिपाता प्रबुद्धस्तु मत्प्रसादाच्च भामिनि।।८९।।

प्राप्यते तु परं तुल्यं युग्म[5] तन्मन्त्रमूलजम्।
यस्तु पूजयते भक्त्या कुलाधारेण पार्वति।।९०।।

मन्त्रसाधन विधिः

समानेनैव देहेन अनेनैव कलेवरे।
सप्ततिश्च सुसंपूर्णे दिनैर्मासैश्च सुव्रते।।९१।।

पूजान्ते सिद्ध्यतेत्याशु मन्दपुण्योऽपि वत्सरे।
ईदृशी - - - - - - - - - - क्षयङ्करम्।।९२।।

अर्थवादाः

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतैस्तथा।
रमणाण्ययुतान्यानि स्मृत्वा नाशयते ध्रुवम्।।९३।।

मातृपितृनिहन्ता च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
भूसुवर्णहरश्चैव भ्रूणहा शक्तिघातकः।।९४।।

एवमाद्यानि पापानि जन्मकोट्यार्जितानि च।
मेरुमन्दरमात्रापि राशिः पापस्य सञ्चिता।।९५।।

---

१. तच्छून्य, क.।
२. सदाधारे, क.।
३. भेदिने, क.।
४. श्री सन्तान, ख.।
५. युग्मैस्तु, ख.।

स्मरणान्नाशयेत्पापं तमस्सूर्योदये यथा।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।।९६।।

यत्पुण्यं सर्वपापेषु राहुग्रस्तेदिवाकरे।
तत्पुण्यं भूरिगुणितं मन्त्रयुग्मेश्वरस्य च।।९७।।

एकेनैव परावर्ते इत्याज्ञा पारमेश्वरी।
सर्वदुःख प्रशमनं सर्वकामविभूतिदम्।।९८।।

महाधिकारफलदमलक्ष्मितमनाशनम्।
दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वपापनिबर्हणम्।।९९।।

हृदये तिष्ठते युग्मं यस्यैषमहतस्स्वरम्।
वलीपलितनिर्मुक्तः मृत्युजिद्वज्रकायवान्।।१००।।

भुक्त्वा मनेप्सितान् भोगान् खेचराद्याणि सौष्ठवान्।
स्वेच्छ(या)नेन देहेन उत्पतेद्गगनान्तरे।।१०१।।

इति सत्यं महालक्ष्मि भैरवस्य वचो यथा।
येऽपि पापरता मूढा[1] सदेशा सत्यवर्जिताः।।१०२।।

गुर्वग्निमतविद्विष्टा समयाचारलङ्घकाः।
स्वयं मन्त्रव्रतग्राहा लिङ्गोत्पाटन तत्पराः।।१०३।।

ये योगीवीरविद्विष्टा ममद्रोहा तरुद्रुहा।
तेऽपि सिद्ध्यन्ति ना - - मा मन्त्रयुग्म प्रभावतः।।१०४।।

पितृमातृनिघातापि लीलयास्मरणात्सकृत्।
इति सत्यं महाभागे भाषितमिति - - - - ।।१०५।।

।। इति श्री कौलागमे पिङ्गलान्तखण्डेविनिर्गते
वृद्धस्वच्छन्दव्याधिभक्षभैरवाभिधाने तृतीयः पटलः।।

१. मूर्खा, क.।

।। चतुर्थ पटलः ।।

[1]ॐ स्वस्ति।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीगुरवे सरस्वतीरूपाय नमः।।

श्रीभैरव उवाच

अद्य में सफलं जन्म अद्य में सफलं तपः।
अद्य मे सफला चक्षुः ज्ञानाञ्जनशलाकया।।१।।

अद्य प्राप्तं मया ज्ञानं सर्वस्व हृदयं परम्।
संसारोन्मूलनं दिव्यं पुण्यं पापक्षय ङ्करम्।।२।।

त्वत्प्रसादेन में नाथ स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
स्वरूपं देवदेवस्य बृद्धनाथस्य भैरव।।३।।

स्थूलसूक्ष्मविभागेन बृद्धकालीयुतस्य च।
कथय स्व प्रसादेन जटाखण्डेन्दुशेखर।।४।।

योगिनी हृदयोपदेशः

श्रीभैरव उवाच

शृणु तत्परमं ज्ञानमज्ञानतमनाशनम्।
दिव्यं ते सम्प्रवक्ष्याभि स्वरूपं पारमेश्वरम्।।५।।

हृदयं[1] सर्व देवीनां योगिनीनां महोदयम्।
आद्यं हृदयं सर्वस्वं स्वस्वभावं सदोदितम्।।६।।

यत्तदादि परं ब्रह्म जीवभूतं सचेतनम्।
चन्द्रार्काग्निकलाधारे[2] कामिनीनां दयावहम्।।७।।

---

१. हृदये, ख.।

२. कलाधार, ख.।

स्वसंविद्रूपपरमं कान्तार प्रमुख्ययम्।
सर्वावस्थान्तरावस्थं सर्वज्ञं सर्वबृंहितम्।।८।।

षट्कोणचक्रमध्यस्थं शक्तिगर्भान्तरोदितम्।
भित्वा षट्चक्रपन्थानं षोडशाधार बृंहितम्।।९।।

कृत्वा चैवात्मात्मान[1] पञ्चतत्त्वामृतं कुलम्।
आधारादि शिवान्तान्तं यावदव्यक्तगोचरम्।।१०।।

स्वस्वभावस्वधातुस्थं[2] .... ।
.... रे स्थाने भैरवे सर्व ....।।११।।

.... चिदाकाशे निरञ्जने।
तत्रस्थं .... नामयम्।।१२।।

अखण्डमण्डलाकारमुदयास्तमवर्जितम्।
स्वस्वभावं निरानन्दं स्वशक्तिकिरणोज्जवलम्।।१३।।

स्वभावं सर्वगानन्तं निर्गुणं तु गुणावहम्।
भावगम्यं गुणाधारं चित्कलावलिमण्डितम्।।१४।।

चिद्रूपं तु चिदाकारं देवं चिद्व्योम भास्करम्।
सर्वावस्थान्तरावस्थं भावाभाव पदोज्झितम्[3]।।१५।।

शुभाशुभपदाधारं पुण्यपापान्तरोचितम्।
भावगम्यं निरालम्बं सालम्बं ज्ञानसागरम्।।१६।।

सर्वतत्त्वालयानन्तं विश्वरूपमनामयम्।
सर्वसत्त्वोद्भवं धाम सर्वसत्त्वालयं लयम्।।१७।।

---

१. व्ध्वानं, क.।
२. स्वधान्तस्थं, क.।
३. पदोर्जिवतम्, क.।

सर्व भूतेश्वरेशानं स्थित्योत्पन्तिलयङ्करम्।
त्रिस्वरूपं त्रिमार्गस्थं चित्कलाकलनोर्ज्जितम्।।१८।।

आलयं सर्व देवीनामुद्भवं प्रलयं अजम्।
चित्तं सर्वगतं शान्तं खस्वरूपमरूपिणम्।।१९।।

पञ्चात्मा पञ्चनिलयं चतुर्धा संव्यवस्थितम्।
पिण्डस्थं चापदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम्।।२०।।

सितं रक्तं च पीतं च अमितं परमेश्वरम्।
अवर्णं वर्णमास्थाय चतुर्धा संस्थितं प्रिये।।२१।।

न जानन्ति हि मूर्खान्ता ज्ञानाञ्जनविवर्जिताः।
अनन्तमस्वरं धाम जीवभूतं निरञ्जनम्।।२२।।

निराकारं निराभासं निराधारं निरामयम्।
निरौपम्यं निराधारं सर्वावस्थान्तरोदितम्।।२३।।

स्वेच्छाकृत्वात्मनात्मानं ते.....................।
पञ्चतत्त्व मयं धाम त्रिधामोदरमध्यगम्।।२४।।

सप्तस्त्रोताननं नाना भीमवक्त्रं कपालिनम्।
पराशक्तिसमायुक्तं महाप्रेतासनस्थितम्।।२५।।

एक विंशाननं शम्भुं रुद्रपीठासनस्थितम्।
प्रेतपद्मो पविष्टं वै महाभैरव विग्रहम्।।२६।।

ज्वाला[1]लिङ्गान्तरे दिव्यं[2] कृत्वा नित्योदितोदयम्।
स्वयमेवान्तरान्तात्मा भैरवात्सर्वबृंहिता।।२७।।

---

१. ध्वर्जा., क.।

२. कृत्वेत्यादि (श्लो. २७) 'हुताशनम्' (श्लो० ४८) यावत् ख मातृकायां नास्ति। पत्रमेव नष्टम्।

स्वरूपभेदकथनम्

अकुलात्कुलरूपं वै विस्फुलिङ्गमिवोर्जितम्।
तत्रोच्छलितमूर्तित्वाद्देवं भैरवभैरवम्॥२८॥

बृद्धनाथेति विख्यातमघोरं घोरनाशनम्।
महाघोरेश्वरं नाथं स्वच्छन्दं परमेश्वरम्॥२९॥

अनादिनिधनं ब्रह्म सप्तस्त्रोतं जगद्गुरुम्।
स्व-स्वभावं स्वयाम्भू[1]क्तं देवं चिद्व्योम भैरवम्॥३०॥

आनन्दं तु परानन्दं नित्यानन्दं निरञ्जनम्।
सर्वानन्दमजं शान्तं सप्तधा एकरूपिणम्॥३१॥

वक्त्राभिधानानि

आनन्दं पूर्वतो वक्त्रं परानन्दं तु चोत्तरम्।
नित्यानन्दं तु याम्यायां पश्चे चैव निरञ्जनम्॥३२॥

सर्वानन्दमधोवक्त्रं ऊर्ध्ववक्त्रमजं विभुम्।
शान्तानन्दं तदूर्ध्वं वै देवदेवस्य सुव्रते॥३३॥

ब्रह्मा वै पश्चिमं वक्त्रं विष्णुश्चैव तथोन्तरे।
रुद्रस्तु दक्षिणे वक्त्रे ईश्वरः पूर्वतः प्रिये॥३४॥

अजः सदाशिवः प्रोक्तः सद्यः शक्तिः शिवोर्ध्वतः।
अघोरः दक्षिणे वक्त्रे सद्योजातस्तु पश्चिमे॥३५॥

पूर्वे तत्पुरुषः प्रोक्तः वासुदेवो तथोत्तरे।
ईशाने तु........... हि(सक्तन्देन्दुर्गमम्[2])॥३६॥

स एव ललितः देवः स्वच्छन्दः परमेश्वरः।
यत्तदादि परं ब्रह्मं ज्वलत्कालानलप्रभम्॥३७॥

---

१ स्वयम्भोक्तं, क. ख.।

२ एवमेव ख मातृकायां पठितानि अक्षराणि।

महा चिपिटनाथो वै भिन्नाञ्जनचयप्रभः।
ऊर्ध्वकेशः कोटराक्षः स्वर्ण वित्तोप हारिकः।।३८।।

नारसिंहवपुश्श्रीमान्दक्षिणाननसंस्थितः।
यत्तद्वै पूर्वजं वक्त्रं सिन्दूरारुण (चोर्ध्वगम्)।।३९।।

ईषत्करालवदनं कुलमार्ताण्ड भैरवम्।
सर्वग्रासकरं रौद्रं भूरिभास्करसन्निभम्।।४०।।

यत्तद्वैऊपूर्वजं वक्त्रं सर्वसत्त्वालयोद्भवम्।
अजवक्त्रेति विख्यातं भवेत्सर्वज्ञभैरवम्।।४१।।

तस्योर्ध्वे यत्परं सौम्यं सर्वसत्तानुकम्पिनम्।
लोकनाथेति प्रोक्तं वै बौद्धं भरितभैरवम्।।४२।।

हेरूकेति सविख्यातः कालकङ्कालरूपिणम्।
षष्ठं मायामयं प्रोक्तं सप्तमं च अतश्शृणु।।४३।।

यत्तद्वै सप्तमं वक्त्रमधो मुखविजृम्भितम्।
पञ्चात्मापञ्चनिलयं शाक्तं श्रीकण्ठभैरवम्।।४४।।

दुष्प्रेक्षं कालसंहारं स्वगुप्तं सप्तमोदितम्।
सर्वकामार्थ फलदं स्मरणाद्भोगमोक्षदम्।।४५।।

पृथिव्या पूर्वमानन्दो मायानन्दस्तुचोत्तरम्।
पश्चिममलानन्दः तेजानन्दस्तु दक्षिणम्।।४६।।

ऊर्ध्वानन्दो तथाकाशमधश्शक्तिश्शिवोर्ध्वगम्।
पूर्वे कृतयुगानन्दः त्राणानन्दस्तु पश्चिमे।।४७।।

द्वापरे दक्षिणानदः श्रीकलौ चोत्तरेस्मृतम्।
परं चै वोत्तरे विद्यात्तस्योर्ध्वमपरं शिवम्।।४८।।

धरापतित्वनामानं - - - - - - - - - - - - - -।
- - - - - - - - - - - - - यजुर्वेदे तु पश्चिमे।।४९।।

साम चैवोत्तरानन्दमथर्वश्चोत्तरे मतम्।
अधस्सूर्यश्शशिश्चोर्ध्वे अजवक्त्रं हुताशनम्।।५०।।

शब्दं पूर्वे तथा स्पर्शं पश्चिमे चोत्तरे रसम्।।
रूपं वै दक्षिणानन्दे शब्दानन्दमजं तथा।।५१।।

अधो गन्धोर्ध्वगं विष्णुरजवक्त्रं पिनाकधृक्।
ओड्यान चोत्तरानन्दे कामरूपं तु दक्षिणे।।५२।।

वामे श्री पूर्णपीठं वै पूर्वे जालन्धरं तथा।
कामानन्दमधोवक्त्रे क्रोधश्चैवमजे प्रिये।।५३।।

(लोमस्येष?) मजस्योर्ध्वे बौद्धे भरितभैरवम्।
शाक्तं शिवमधोवक्त्रादजस्योर्ध्वं तु शाम्भवम्।।५४।।

सौरं श्रीपूर्वमानन्दो वैष्णवो चोत्तरानधे।
बौद्धं वै दक्षिणानन्दा आरहन्तं तथोतरा।।५५।।

अजवक्त्राद्विनिर्यातं वृद्धस्वच्छन्दभैरवम्।
पूर्वे पूर्वान्वयं विन्द्यात् पश्चिमे पश्चिमान्वयम्।।५६।।

दक्षिणे दक्षिणं जातमुत्तराश्चोत्तरान्वयम्।
अधश्शक्तिशिवश्चोर्ध्वे दिव्यौघमजवक्त्रजम्।।५७।।

तन्त्रार्थं दक्षिणस्त्रोता श्रीमतार्थं तु पश्चिमा।
कुलार्थं चोत्तराद्भद्रे कौलार्थः पूर्वतः प्रिये।।५८।।

यामलार्थमधस्त्रोता क्रमार्थमजवक्त्रजा।
अजस्योर्ध्वात्समुत्पन्नं निरीहं तु निरास्तिकम्।।५९।।

तत्त्वपीठमजस्त्रोता तस्योर्ध्वाद्योगपीठकम्।
मुद्रापीठं तु वै पूर्वे मन्त्रपीठं[1] तु दक्षिणे।।६०।।

विद्यापीठोत्तराज्जातं मण्डलाख्यं तु पश्चिमात्।।
शक्तिपीठमधोवक्त्रात्तथान्यं[2] शाम्भवानथे।।६१।।

पिण्डस्थं पूर्वमाद्यं च पादस्थं पश्चिमं स्मृतम्[3]।
आपस्थं दक्षिणानन्दं रूपातीतं[4] तथोत्तरम्।।६२।।

अजानन्दात्तु वै सृष्टिस्तस्योर्ध्वाज्जगतो[5] स्थितिः।
संहारन्तु अधस्त्रोता इत्यानन्दमतोदितम्।।६३।।

कथितं सरहस्यं वै स्वरूपं पारमेश्वरम्।
गोपितं कुल कौलैश्च क्रमाख्ये मतयामले।।६४।।

अस्मिन् कौलागमे दिव्ये त्वत्प्रीत्याप्रकटीकृतम्।
गोपनीयं[6] प्रयत्नेन जननीजारगर्भवत्।।६५।।

गोपनात्सिद्ध्यतेत्याशु अगोप्यो नरके व्रजेत्।
साक्षादपिजगन्नाथ इत्याज्ञा पारमेश्वरी।।६६।।

।। इति महाकौलागमे पातालपिङ्गलान्तरखण्डविर्निर्गते श्री वृद्धस्वच्छन्द-
कौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे चतुर्थो पटलः।।

---

१. पीठे, ख.।
२. न्ये, ख.।
३. स्मृतः ख.।
४ नास्ति, क.।
५. 'जज्जरे' इत्यस्पष्टम्, क.ख.।
६ गोपनेयं, क.।

॥ पञ्चमः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

स्वामिंस्त्वत्प्रसादेन स्वरूपं पारमेश्वरम्।
श्रुतं. सर्वमशेषेण सर्वज्ञं सर्वबृंहितम्॥१॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि अर्चनं श्रीक्रमान्तिकम्।
कौलिकेन विधानेन स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥२॥

कथय स्व प्रसादेन योगिनीगणवन्दित॥३॥

श्री भैरव उवाच

साधु साधु महालक्ष्मि ज्ञानक्षि[1]ज्ञानभाजने।
महाभैरव नाथस्य स्वरूपस्याव्ययस्य च॥४॥

स्वभावस्य स्वरूपस्य वृद्धकालियुतस्य च।
वृद्धस्वच्छनन्ददेवस्य मूलदेवस्य सुव्रते॥५॥

परिवारयुतस्यैव स्वेच्छया परमस्य च।
दिव्यपूजाक्रमं वच्मि यत्र - - - सुरैः॥६॥

यत्र ब्रह्मादयोदेवा विष्णुरुद्रपुरोगमाः।
सदाशिवशिवाद्यादि महालक्ष्म्यादिदेवताः॥७॥

शुष्काद्या योगिनीस्सर्वाश्चामुण्डाद्याश्च मातरः।
सर्वतत्त्वाश्च विविधाः पशुत्वं परिकल्पिताः॥८॥

---

१. ज्ञानाक्षी, ख.। पार्श्वे 'ज्ञानार्थी'।

कश्शक्तिः कोऽर्चयेत्तस्य येन रूद्रांशसम्भवः।
येन वा स्वयमेवेह शापभ्रष्टस्तु भैरवः॥९॥

सत्यरूपधरश्श्रीमान्संस्थितस्तु महीतले।
तस्यार्चनमिदं दिव्यं शृणु कौलक्रमान्तिमम्॥१०॥

वृद्धस्वच्छन्दनाथार्चनविधिः

नदी तीरे तले पात्रे नार्चयेत् स्थण्डिले जले।
मृद्धटे कलशेनाथ नार्चचेत्प्रतिमादिभिः॥११॥

पटस्थं सिद्धिदं प्रोक्तं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
तत्प - - - - निदं प्रोक्तं कौलवैनेयकं परम्॥१२॥

परं च अपरं चैव तृतीयं च परापरम्।
स्वकुलं तु परं प्रोक्तं सबाह्याभ्यन्तरोदितम्॥१३॥

आलयस्सर्वतत्त्वानां योगिनीनां महोदयः।
अपरं तु परं व्योम सर्व तत्त्वालयोद्भवम्॥१४॥

अखण्डमण्डलाकारं उदयास्तमवर्जितम्।
परापरं तृतीयं वै दिव्यं श्री कौलिकं शृणु॥१५॥

यन्त्र निर्माण विधिः

सर्वभूतप्रियावेश्या सुभगा सा विधीयते।
मायाकर्षयतेत्याशु रसेन्दुं कूपमध्यगम्॥१६॥

कुलाङ्गनाथवा भद्रे सुभगासर्वसिद्धिदा।
सहजा पीठजावाथ मातावाश्वपचोन्त्यजा॥१७॥

स्वपत्नी गुरूभार्या वा द्वयोर्मध्यैकतः[1] प्रिये।
सकाशाद्वीरमुख्ये तु प्रीत्या दम्भेथवा प्रिये॥१८॥

---

१. एभ्यो सन्येकतः, ख,।

अक्षतं तु नवं वस्त्रं गृहीत्वा सर्वपट्ट क म्।
समुत्पन्नं कार्पासं वा अलाभतः॥१९॥

वस्त्रपूतेन सुभगे क्षालयित्वा कुलामृते।
त्रिगुणं चतुरस्त्रं वै दीक्षितेन स्वशिल्पिना॥२०॥

कृत्वा वै तत्परं दिव्यं एकान्ते सुसमाहितः।
कुङ्कमेनोल्लिखेदा[१] दौ ततो वै सर्वपट्टजे॥२१॥

सुरक्ते तु महासूत्रे आलिखेन्मण्डलं शुभम्।
[२]समन्ताच्चतुरस्त्रं वै त्रिरेखं सर्वकामदम्॥२२॥

यन्त्रस्वरूपकथनम्

तन्मध्ये द्वि? त्रिदलं पद्मं कर्त्तव्यं तु सकर्णिकम्।
दिव्यं श्रीकेसरोपेतं तद्बाह्ये कौलिकं परम्॥२३॥

त्रिकोणान्ते त्रिकोणेशं शाक्तषट्कोणभैरवम्।
चक्रगणेश्वरं दिव्यं सबाह्याभ्यन्तरोदितम्॥२४॥

सोमार्कादि कलान्तस्थं तद्बाह्ये चतुरस्त्रके।
इन्दुमण्डल मध्यस्थं द्वात्रिंशद्दलभूषितम्॥२५॥

कर्णिकान्तादि सुभगे [३]दलेर्केनात पत्रकैः।
प्रत्येकस्यान्तरे भद्रे पद्मं चाष्टदलं लिखेत्॥२६॥

एवं कुर्यात्क्रमेणैव यत्र पूज्यास्तु ते शृणु।
कर्णिकायां न्यसेत्प्रोक्तं प्रहसन्तं सुचेतनम्॥२७॥

---

१. त्या. (क. ख,) स्थाने 'दा' पठितम्।
२. स भं तु चतुरस्त्रं वा, क.।
३. दलेर्केनात्रपत्रकैः, क.।

अथ यन्त्रे लेखनीयानि अभिधानानि चक्रार्चनञ्च

सर्वलो[1]कक्षयकरं सर्वकारणकारणम्।
सर्वाधारं निराधारं सर्वभूतान्तरोदितम्।।२८।।

पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं भैरवं सर्वबृंहितम्।
फलमालाधरं सौम्यं चित्कलावलि मेखलम्।।२९।।

सिद्धिदं सर्वदिवीनां साधकानां वरप्रदम्।
ईषत्करालवदनं स्वतन्त्रं भोगमोक्षदम्।।३०।।

चित्घ्न शयनारूढं काद्यखट्वाङ्गधारिणम्।
स्वस्वभावस्वधाम्निस्थं भोगष[2]ट्कोपवीतिनम्।।३१।।

भोगभूषित सर्वाङ्गं भोगमेखलमण्डितम्।
[3] भोगावलयभूषाढ्यं - - - - - भोगपर्यङ्कशयिनम्।।३२।।

योगिन्या हृदयानन्दं भोगस्त्रग्धाम भूषितम्।
भोगिन्या सर्वमाधारं भोगहस्तं जगद्गुरुम्।।३३।।

तस्यासनस्थितं नाथं भैरवं भैरवीप्रियम्।
नित्योदितमजानन्तं विभुं श्रीभैरवीयुतम्।।३४।।

भोगलिङ्गान्तरारूढं लिङ्गमूर्ति प्रपूजयेत्।
तद्बाह्यद्विदले पद्मे शक्तितत्त्वं तु योर्चयेत्[4]।।३५।।

पूर्वादारभ्य सुभगे पूजयेत्तु यथा शृणु।
परा च अपरा चैव तृतीया चापरापरा।।३६।।

---

१. कौल, क.।

२. शङ्को०, ख., पार्श्वेच 'यज्ञो'।

३. भोगवर्या - - -, क,।

४. तद्बाह्यतृदले पद्मे शक्तितत्त्वत्रयोऽर्चयेत्। ख.।

तद्बाह्ये द्वादशान्मध्ये षट्कोणे पूजयेच्छृणु।
खेचरी भूचरी चैव गोचरी दिक्चरी तथा।।३७।।

शामिनी डाकिनी चैव काकिनी लाकिनी तथा।
राकिनी क्षपिका चैव द्राव्याभासुरिकास्तथा।।३८।।

द्वादशैता महादेव्या दिव्याधस्सर्वकामदाः।
अरकेष्वन्तरालेषु चक्रे व्याप्य व्यवस्थिताः।।३९।।

द्वात्रिंशद्दलके चक्रे तृतीये पूजयेच्छृणु।
गणेशं दक्षकर्णे च वटुकं वल्लभाम्बिका।।४०।।

श्रीकण्ठं च तथा नित्या मन्त्रमाता पराकला।
सर्वसंस्थान पादं वै महालक्ष्मियुतोऽर्चयेत्।।४१।।

एतत्पूर्वं दिशोभागे क्षेत्रपाला दशाष्टके।
पूजितव्यास्ततः पश्चाद्गुरुपङ्क्तिस्तु दक्षिणे।।४२।।

गुरूं परमगुरूं भद्रे परमेष्ठिस्तृतीयकम्।
पूर्वाचार्यं चतुर्थं वै आसां भार्यामथोच्यते।।४३।।

विच्चा चोच्छुष्मविच्चा तु कालविच्चा तृतीयका।
पूर्वाचार्यसदाचार्य - - - - - - - - ।।४४।।

- - - - - - - - - भागे श्रीमन्त्रानकुलक्रमम्।
चतुयुगावतारे वै सान्वयं भोगमोक्षदम्।।४५।।

सिंद्ध पक्तिं परादेव्या स्वभार्या सहिता चरेत्।
श्रीखण्डेन्दुं तु विच्चाया कूर्मं श्रीभद्र मङ्गला।।४६।।

भीमपादं ता - - - - - - दूती श्री काममङ्गला।

स्वच्छन्दं कुङ्कु[1]णादेवी एतदष्टकमुत्तमम्।
ततः पद्माष्टकं दिव्यं कौवेर्य[2] पूजये द्दिशम्।।४७।।

चतुष्कं देव देवीनां चतुष्पीठसमन्वितम्।
श्रीपीठं प्रथम पत्रे ओडचानं[3] देवतालये[4] ।।४८।।

द्वितीयं सिद्धचामुण्डां जया देवी च सैव हि।
तृतीये पूर्णपीठं वै सर्वयोगिनि सङ्गमम्।।४९।।

चतुर्थे रक्तचामुण्डां सा एव विजयास्मृता।
पञ्चमे पूजयेत्पीठं श्रीमज्जालन्धरोत्तमम्।।।५०।।

षष्ठे श्री शुष्कचामुण्डां जयन्ती सा प्रकीर्तिता।
सप्तमे कामरूपां वै पीठराजेश्वरेश्वरीम्।।५१।।

अष्टमे चोत्पलादेवीं कालसंङ्कर्षणीतु सा।
घोरान्धकारवपुषा सा प्रोक्ता अपराजिता।।५२।।

तृतीयं कथितं चक्रं स्व पिण्डे भोगमोक्षदम्।
द्वात्रिंशारं परं दिव्यं सर्वकामविभूतिदम्।।५३।।

एतन्ते त्रिविधं प्रोक्तं परं श्रीपारमेश्वरम्।
एकहस्तं द्विहस्तं वा त्रिचतुर्हस्तमेव वा।।५४।।

किष्किशा - - - - - स्त वा तत् पटं सर्वकामदम्।
अतोर्ध्वं नैव कर्तव्यं च - - - - मात्मनि ।।५५।।

गोपितं सर्व कालेषु पटमेतकीलितम्।
अस्मिन् कौलजनप्रोक्तं सर्वकामविभूतिदम्।।५६।।

---

१. कुत्तृणा, ख.।
२. कौवीर्य, ख.।
३. ओडचानं, क.।
४ देवतालयम्, ख.।

सर्वस्वं हृदयं दिव्यं सिद्धयोगेश्वरालयम्।
कीलितं सर्वतन्त्रेषु कुलकौले[1]प्रकाशितम्।।५७।।

सिद्धि मुक्ति हरं सत्यं साधकानां निरन्तकम्[2]।
यदुक्तं देव देवेन गुरोरपि[3] न दर्शयेत्।।५८।।

।। इति महाकौलागमे पातालपिङ्गलान्तरखण्डविर्निर्गते श्री वृद्धस्वच्छन्द-
कौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे पञ्चमः पटलः।।

---

१. कौलेः, ख.।
२. निरर्थकम्, ख.।
३. गुरुस्यापि, क, ख.।

॥ षष्ठः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

कोऽसौ प्रेतमिति - - - - - - [1]महा भैरवतुल्यकम्।
स्वरूपं कीदृशं तस्य पञ्चवक्त्रस्य शङ्कर ॥१॥

एतदाचक्ष्व मे नाथ संशयं छिन्धि शूलिन ॥२॥

श्री भैरव उवाच

अहं प्रश्नवरं भद्रे गूढार्थं[2] ज्ञानसागरम्।
अकथ्यं[3] कथयिष्यामि यत् सुराणामगोचरम् ॥३॥

यत्तथादि परं ब्रह्म स्थूलं सूक्ष्मं[4] परापरम्।
चिदाकाशोदितं शान्तं चिन्मयं परमात्मक[5]म् ॥४॥

चित्सद्मशयनसीनं चित्कलावलि मेखलम्।
जीवभूतं सचैतन्यं स्थित्योत्पत्तिलयङ्करम् ॥५॥

भोगहस्तं भवाधारं भोगकुण्डलमण्डितम्।
भोगयज्ञोपवीताङ्ग भोगकङ्कणनूपुरम् ॥६॥

भोगिनी हृदयाधारं भोगहस्तं जगद्भवम्।
भोगस्था भोगिनी सर्वा निर्भोगं परमेश्वरम् ॥७॥

---

१. स वै, ख.।
२. गूढाक्षं, ख.। पार्श्वे 'गूढ़ार्थं'।
३. अवश्यं, क.।
४. शूलं चक्रं, क.।
५. परमात्मनम् क.।

एषो[1] वै कौलिकं प्रेतं प्रेतस्त्रग्धाम मण्डितम्।
ईशत्करालवदनं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
सितकल्लोलधवलं हि मकुन्देन्दुवास[2]सम[क]॥८॥

चतुर्वक्त्रास्मृताह्येता महाप्रेतेश्वरस्य च।
पञ्चमं तु परं प्रोक्तं परं ब्रह्म मयं शिवम्॥९॥

जीवादित्यं तु तं विन्द्य त्सर्वाधारं स्वयम्भुवम्।
एषोऽसौ परमं धाम सप्रेतङ्कालाग्निभैरवम्॥१०॥

शशिसूर्याग्निमध्यस्थं श्री कण्ठं च सदोदितम्।
एषस्सदाशिवं ब्रह्म हंसो नारायणं स्वयम्॥११॥

एषोऽसौ परमादित्यं वीर स्वच्छन्दडामरम्।
मन्थानभैरवं ह्येष आनन्दं भोगहस्तकम्॥१२॥

एष सौरेश्वरं भद्रमष्टादशभुजं अजम्।
फलमालाधरं ह्येष काद्य खट्वाङ्गपाणिनम्॥१३॥

एषोसौ शाम्भवं शम्भुं शक्तेश्शक्तिस्वरूपिणम्।
लोकनाथं स्मृतं भद्रे साक्षाद्धेरुकभैरवम्॥१४॥

सौरे सौरं स्मृतं ह्येष वैष्णवे विष्णुख्य[२]म्।
अर्हन्तेशं भवेद् ब्रह्मा वेदान्ते पुरूषः स्मृतः॥१५॥

एष हंसमितिख्यातं यामले सर्वबृंहितम्।
स्वशक्ति किरणाभासं सर्वज्ञं सर्वबृंहितम्॥१६॥

क इतः परं पाठः खण्डितः उभयोः मातृकयोः।
१ नास्ति, क.।
२ वामगम्, क.।

अस्यासनगतास्सर्वा मन्त्रमुद्रादिपीठकाः।
सानन्तादि शिवान्तान्तं यावदव्यक्तगोचरम्॥१७॥

अनेन व्यापितं सर्वं सूत्रे मणिगणा इव।
एष लोकक्षयकरं सर्वकारणकारणम् ॥१८॥

सर्वाकारं निराकारं सर्वतत्त्वालयोद्भवम्।
सर्वस्वं हृदयं गुप्तं शिवं शम्भुं निरामयम्॥१९॥

आधारं सर्वदेवीनां योगिनीनां महोदयम्।
महाभैरवनाथस्य प्रभुराजेश्वरेश्वरम्॥२०॥

गोपितं कुलकौलेषु यथा कश्चिन्महाधनम्।
हृदयं जीवभूतं वै अस्मिन्लोके प्रकाशितम्॥२१॥

अज्ञाते केनचिद् भद्रे सत्यं भैरवभाषितम्॥२२॥

॥ इति महाकौलागमे पातालपिङ्गलान्तरखण्डविर्निर्गते श्री वृद्धस्वच्छन्द-
कौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे षष्ठः पटलः॥

॥ सप्तमः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

आसां मन्त्रोदयं दिव्यं कथय स्व प्रसादतः।
येन विज्ञानमात्रेण मन्दपुण्योऽपि सिद्ध्यते॥१॥

एतच्छुत्वा तु वैष्णव्यं देवदेवेन शूलिनः।
विहस्य सुचिरं कालं प्राश्यपञ्चामृतं चरुम्॥२॥

सन्दष्टोष्ठ पुटं नाथं प्राह गद्गदया गिरा।

श्री भैरव उवाच

शृणुत्वं खेचरी ज्ञानं स्वपिण्डे खगतिप्रदम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं सर्वकामविभूतिदम्॥४॥

शान्तौघरूपकं दिव्यं मन्त्रोद्धारं तु कौलिकम्।
द्विधाभेदेन वक्ष्यामि कर्णान्ते खटिकागमे॥५॥

शून्यं शून्यसमायुक्तं वह्निसम्पुटमध्यगम्।
मायानादकलोपेतं ना रुद्रो लभते स्फुटम्॥६॥

कामसम्पुटमध्यस्थं कामारिङ्कामसंस्थितम्।
नादबिन्दुकलोपेतं लभते योगिनी सुतम्॥७॥

सर्वगाद्यं पुनर्भद्रे सर्वगं बिन्दुभूषितम्।
षष्ठस्वरसमारूढं जीवं चन्द्रार्कभूषितम्॥८॥

एतत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
प्रेतनाथस्य कथितं हृदयं सर्वकामदम्॥९॥

अधुना क्षेत्रपालानां सपत्नीकं शृणु प्रिये।
सप्तादशाक्षरं पूर्वं तृतयं तु चतुष्कलम्।।१०।।

चतुर्थं कथितं बीजं रक्षां तदनन्तरम्।
कामराजपराबीजमेतदष्टाक्षरान्तिमम्।।११।।

चणा - - क्षेत्रपालानां सपत्नीकां प्रकीर्तितम्।
सामान्यं हृदयं वीक्ष्य - - - रिक्षनन्तरम्।।१२।।

शक्तिबीजं शिवं शान्तं तृतीयं पारमेश्वरम्।
अनेनार्चयते दिव्यं गुरुपर्वक्रमान्तिमम्।।१३।।

तृतीयं भोगमन्त्राद्यं रावं रेफविवर्जितम्।
पायहा पञ्चमी बीजं एतत्पञ्चाक्षरान्तिमम्।।१४।।

धर्माधर्मक्षयकरं श्रीमन्त्रानक्षमान्वयम्।
अनेनार्चयते दिव्यं सिद्धचक्रं सदोदितम्।।१५।।

सर्वाधिकारफलदं शापानुग्रहसिद्धिदम्।
भोगहस्ते मयाख्यातं दिव्यरूपमकीलितम्।।१६।।

अथान्यं तु चतुष्पीठं चतुष्पीठसमन्वितम्।
सप्ताक्षरं महादीप्तं सुसिद्धं सर्वसिद्धिदम्।।१७।।

ह्रीं हुँ क्रीं तृतीयं पूर्वं निष्फलं निष्फलात्मकम्।
सर्वगं पूर्व सम्भिन्नं जीवसृष्टिसमन्वितम्।।१८।।

एषोसौ कौलिकं गुह्यं मन्त्रराजात्मतो लभेत्।
हृदयं सर्वपीठानां योगिनीनां महोदयम्।।१९।।

अधुना शक्ति सङ्घट्टं तृतीयं परमेश्वरम्।
परा च अपरा चैव तृतीया तु परापरा।।२०।।

अपरे संस्थिता ह्येव इत्याद्या सर्वदेहिनः।
आसां मन्त्रोदयं वक्ष्ये स्वपिण्डे भोगमोक्षदा।।२१।।

शिव शक्तिमयं युग्मं पराबीजं सदारुणम्।
एतत् त्रिरक्षरं मन्त्रं परादेव्या प्रकाशितम्।।२२।।

ज्ञानविज्ञानफलदमपरा च मतश्शृणु।
तदेवाद्यं परं युग्मं पराख्यं वरुणोर्ज्जितम्।।२३।।

सर्वगो दीपितं कृत्वा अपरा तृतयोदितम्।
सर्वस्वहृदयान्तस्थं - - - - - - - - - - ।।२४।।

- - - - - - ष्टस्तु मदिरानन्दनन्दितः।
- - - - - - - - - - भैरवं वपुम्।।२६।।

प्रस्तरे भूतलं - - - - - - - - - - - - - ।।२७।।

- - स्व स्वभाव स्वरूपेण शिवं भु - - - ।।२८।।

- - - न्यसेत्पुष्पं ध्यात्वां प्रेतं जगद् गुरुम्।
- - - - - - - - - - - - सर्वकारणम्।।२९।।

पूजयित्वा ततः पश्चात् स्वे स्वे मन्त्रेण सुब्रते।
अर्चयेत् क्षेत्रपालेशं ततो धूपं सुकल्पयेत्।।३०।।

ततो वै स्थापयेल्लिंग गन्धधूपाद्यनुक्रमैः।
दधिक्षीराज्यमधुकै द्राक्षश्चेक्षुरमासवः।।३१।।

सुरादि सोत्तमैर्द्रव्यैर्दध्यमासादिनुक्रमैः।
पश्चाद्वेषोत्तमं दिव्यं महास्नानं प्रकल्पयेत्।।३२।।

मणिरत्नमये पात्रे सौवर्णे राजतेऽपि वा।
कास्ये चैवात्र सङ्कट्टे तदाभावास्तु बिल्वजे।।३३।।

मध्यवृत्तिपदोद्भूतं गृहीत्वा स्वकुलामृतम्।
कर्पूरागुरुसंयुक्ते मृगजामलयान्वितम्।।३४।।

मूलमन्त्रेति सत्कृत्वा मुनिसङ्ख्या विधानवित्।
अयमेवाथोऽयस्कान्ते पात्रान्ते लिङ्गमुत्तमम्।।३५।।

स्नात्वा चैवोपविष्टे वै लिङ्गावित्सङ्ख्यया शुभम्।
धर्माधर्मक्षये प्रोक्ते विशुद्धे विशुवे परे।।३६।।

चिच्चितान्तरसंल्लीने ध्यात्वा सङ्घट्टभैरवम्।
युक्ति युक्तं पिवेन्मद्यं पिङ्गलं निर्मलं रसम्।।३७।।

तत्क्षणाद् भवती वीरो वलीपलित वर्जितः।
- - - - - - - मपरे नित्यं द्वितीयमिव भैरवः।।३८।।

एवं स्नानविधिङ्कृत्वा कर्णिकान्ते जगद्गुरुम्।
मुनिसङ्ख्यार्चयेद्देवं पराशक्तिसमन्वितम्।।३९।।

अष्टत्रिंशाक्षरं घोरं काली सप्तादशाक्षरा।
पूजामन्त्रेण वो पश्चात् त्र्यक्षरे सर्वकामदे।।४०।।

भूतसङ्ख्यार्चयेद्देवं द्विधाशाक्ति स्त्रिधाशिवम्।
पश्चात्क्रमेऽर्चयेत्सर्वा गुरुसिद्धादिपीठगाः।।४१।।

तृसङ्घट्टं ततः पद्मं द्वादशारं ततोर्चयेत्।
षट्कोणं परमं धाम सर्वशक्त्यालयोद्भवम्।।४२।।

गृह्य पुष्पाञ्जलिं पश्चाज्जातंत्यक्त्वा तु भूतले।
विद्यायुग्मं ततः पूज्यं त्रिवर्णेशं सकृत् सकृत्।।४३।।

ततो वै समयाख्या तु भोगमोक्षार्थकामदा।
पञ्चषड्भिस्तु कोटीनां विद्यां समयमुत्तमाम्।।४४।।

या स्मृता राजराजेशी पञ्चशार्णा पराकला।
मूलमुख्यतरा दीप्ता धर्माधर्मक्षयङ्करी॥४५॥

यत्रोत्पन्नास्तु ते मन्त्रा अघोराद्यादिनुक्रमा।
सप्तादशाक्षराद्यादि मूलमुख्यतरान्तिमा॥४६॥

राजराजेश्वरादिव्या तया विद्याजगाम्बिके।
त्रिरावृत्तं प्रयोगेण नित्यमेवं प्रपूजयेत्॥४७॥

यया पूजित मात्रा वै सकृत्स्मृत्वा वानघे।
अनेन शरीरेण सायोज्यत्वं प्रयच्छति॥४८॥

पश्चात्प्रकल्पये धूपं पञ्चब्रह्मनवात्मकम्।
ततश्चाष्टाङ्गविधिना दण्डपातं प्रदक्षिणम्॥४९॥

कृत्वा दिव्या महाराणि कर्मणा मनसागिरा।
निवेदयेत्परे तत्त्वे पुष्पहस्तं प्रकल्पयेत्॥५०॥

धर्माधर्मं च - - पुण्यपापं शुभाशुभम्।
कामक्रोधमलं लोभं शब्द स्पर्श रसं तथा[क]॥५१॥

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वर श्च सदाशिवः।
एतत् सर्वमशेषेण नानावृत्यौघमण्डलम्॥५२॥

पञ्चाभूतात्मकं पिण्डं तत्त्व षट्त्रिंशबृंहितम्।
चतुर्विंशपदोपेतं षड्ध्वनिलयं परम्॥५३॥

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपञ्चकम्।
आब्रह्मभुवनं सर्वं स्वकुलं कौलिकं पशुम्॥५४॥

निवेदयेत्परे ब्रह्मे भैरवोत्सङ्गबृंहिते।
स्वदेहोत्कर्तनं कृत्वा ज्वलयेत् - - - ॥५५॥

क खण्डितोऽत्र पाठः।

होम एतत्समाख्यातं यन्त्रस्याप्यायनं महत्।
एतद्वै त्रिविधं का - - - - - ट्कायिक वाचिकम्।।५६।।

कृत्वा पूर्वेनयेत्पश्चात् महापशूपहारकम्।
सर्वाङ्गलक्षणोपेतं प्रत्यग्रं तु नरेश्वरम्।।५७।।

स्वसातं सुमहानन्दं बद्धनेत्रपदं शुभान्।
तदनाप्तमशेषं व अजं वा महिषं वृषम्।।५८।।

मीनं चाथ वरारोहे यत्किञ्चिज्जीवरूपिणम्।
सुशुष्कं चैव सुस्नातं सुरोमं श्रृंङ्गिणं शुभम्।।५९।।

सर्वलक्षणसम्पूर्णं अक्षताङ्गमरोगिणम्।
ह्रीं क्षां क्षं तृतीये नेन आकर्णान्तावलोकयेत्।।६०।।

ततो नेत्रपटोद्धाट्य कुलाचारसमन्वितैः।
अर्घपुष्पासवोपेते शिरः पृष्ठे कटिस्थले।।६१।।

प्रेक्षयित्वा प्रधानेन दिव्येन वेघ रूपकैः।
यावन्न चालयेद्देहं तावन्न पशुपातयेत्।।६२।।

ह्रीं धूंक्षः तृतये नैव वीरकर्म समार्चयेत्।
- - - - - - - - - - कामविभूतिदम्।।६३।।

यदादौ चालयेद् वक्त्रं पश्चाद् देहं वरानने।
अशुभं ते तु विज्ञेयं दुःख शोकामयप्रदम्।।६४।।

यदादौ धुनते वक्त्रं पश्चाद्देहं पुनश्शिरम्।
सिद्धिदं तत्र विज्ञेयं सप्तदेहविलम्बितम्।।६५।।

प्रवृष्टिं तु यदा मुञ्चे पुरीषाण्डानि शोभने।
समैर्वित्तागमैविन्द्या द्विषमं ज्ञानसिद्धिदम्।।६६।।

पुरीषं तु यदा मुञ्चेत् गृहीत्वा वीर वन्दिते।
स्वकुलामृतसंयुक्तं मातृभृङ्गिरजान्वितम्।।६७।।

कुहा कुष्ठसमोपेतं मुनिसंख्याभिमन्त्रितम्।।६८।।

सप्तादशाक्षरा विद्या नस्ये पाने पिबेद् गुदः।
आपादतलमुण्डान्तं सर्वाङ्गेषु समालभेत्।।६९।।

चतुष्षष्ठिविधैर्घोरैः कालकूटादिनुक्रमात्।
नाभिभूयति सो भद्रे शस्त्रास्त्रै तु स बाध्यति।।७०।।

स्तम्भयेत्सर्वसैन्यानि मन्त्रं देवासुरोपमः।
दिक्पूर्वोभिमुखे भूत्वा यदा यासौ धुनतेऽनघे।।७१।।

तदा अक्षागमं विन्द्याद दिव्यस्त्रीप्रियसंगमम्।
स्थानलाभं शरीरस्य वज्रकायवलं भवेत्।।७२।।

आग्नेया तु भवं घोरे वह्नि सञ्जाननं भवेत्।
दुर्भिक्षं राष्ट्र संपातं राजा चैव विनश्यति।।७३।।

याम्यायां मरणं घोरं कष्टारं - - - भा।
अतिवृष्टिरनावृष्टिः भवते वाम सुव्रते।।७४।।

मन्त्रहस्ताद्भवेत् - - - - - भूहानिर्वियोगम्।।७५।।

कटुबन्धुर्जनैस्सार्धं दुष्ट शत्रवभयं भवेत्।
सुभिक्षं वारुणे भागे सर्व सत्त्वसुसिद्धिदम्।।७६।।

- - - गास्साधकेन्द्रस्य सर्वभूताश्चराचराः।
वायव्यां विधुसंपातं विद्वेषोच्चाटमारणम्।।७७।।

वज्रपाताशिरभयं मरणेचार्थनाशनम्।
यत्किञ्चिदशुभं भद्रे तत्सर्वं वायवीदिशम्।।७८।।

उत्तरे ज्ञान सिद्धिः स्याद्वश्याकर्षणमारणम्।
प्रसादं सर्वदेवीनां सिद्धिं चैव मनेप्सितम्॥७९॥

अधमां मध्यमां कामां कौबेर्यां धुनते यदा।
ईशान्यभिमुखो भूत्वा यदासौ धुनते पशुम्॥८०॥

॥ इति महाकौलागमे पातालपिङ्गलान्तरखण्डविर्निर्गते श्री वृद्धस्वच्छन्द-
कौलाभिधाने व्याधिभक्षभैरवे सप्तमः पटलः॥

।। अष्टमः पटलः ।।

श्री देव्युवाच

आसां मन्त्रोदयं दिव्यं कथय स्वप्रसादतः।
येन विज्ञातमात्रेण मन्दपुण्योऽपि सिद्ध्यते।।१।।

एतच्छ्रुत्वा तु वैष्णवं देवदेवेन शूलिना।
विहस्य सुचिरं कालं प्राश्य पञ्चामृतं चरुम्।।२।।

सन्दष्टोष्ठपुटं नाथ प्राह गद्गदयागिरा[1] ।।३।।

खेचरीज्ञानविधानम्

श्री भैरव उवाच

शृणुत्वं खेचरीज्ञानं स्वपिण्डे खगतिप्रदम्।
भुक्तिमुक्ति प्रदातारं सर्वकामविभूतिदम्[2] ।।४।।

मन्त्रोद्धारक्रमः

शान्तौघरूपकं दिव्यं मन्त्रोद्धारं तु कौलिकम्।
द्विधाभेदेन वक्ष्यामि कर्णान्ते खेटिकागमे।।५।।

शून्यं शून्यसमायुक्तं वह्निसम्पुटमध्यगम्।
मायानादकलोपेतं नारुद्रो लभते स्फुटम्।।६।।

कामसम्पुटमध्यस्थं कामारिङ्कामसंस्थितम्।
नादविन्दुकलोपेतं लभते योगिनी सुतम्।।७।।

प्रेतनाथमन्त्रोद्धारः

सर्वगाद्यं पुनर्भद्रि सर्वगं विन्दुभूषितम्।
षष्ठस्वरसमारूढं जीवं चन्द्रार्कभूषितम्।।८।।

---

१. गम्भीरयागिरा. ख.।

२. पंक्तिनीस्ति, ख.।

एतत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
प्रेतनाथस्य कथितं हृदयं सर्वकामदम्॥९॥

क्षेत्रपालमन्त्रप्रकाशनम्

अधुनाक्षेत्रपालानां सपत्नीकं शृणुप्रिये।
सप्तादशाक्षरं पूर्वं तृतयं तु चतुष्कलम्॥१०॥

चतुर्थं कथितं बीजं ग्लूं क्षां[1] तदनन्तरम्।
कामराजपराबीजमेतदष्टाक्षरान्तिमम्॥११॥

चतुर्णां क्षेत्रपालानां सपत्नीकानां प्रकीर्तितम्।
सामान्यं हृदयं वीक्ष्य ----- रिक्षणान्तरम्॥१२॥

शक्तिबीजं शिवं शान्तं द्वितीयं[2] पारमेश्वरम्।
अनेनार्चयते दिव्यं गुरुपर्वक्रमान्तिमम्॥१३॥

तृतीयं भोगमन्त्राद्यं रावं रेफविवर्जितम्।
पापहा पञ्चमं बीजं एतत्पञ्चाक्षरान्तिमम्॥१४॥

सर्वधर्मक्षयकरं श्रीमन्त्रानक्षमान्वयम् ?।
अनेनार्चयते दिव्यं सिद्धचक्रं सदोदितम्॥१५॥

सर्वाधिकार फलदं शापानुग्रह सिद्धिदम्।
भोगहस्ते मया ख्यातं दिव्यरूपमकीलितम्॥१६॥

कौलिकपीठमन्त्रकथनम्

अथान्यं तु चतुष्पीठं चतुष्पीठ समन्वितम्।
सप्ताक्षरं महादीप्तं सुसिद्धं सर्वसिद्धिदम्॥१७॥

---

१. रक्षां, क.।
२. तृतीयं, ख.।

ह्रीं हुं क्रीं[1] तृतीयं[2] निष्फलं निष्कलात्मकम्।
सर्वगं पूर्वसम्भिन्नं जीवसृष्टिसमन्वितम्।।१८।।

एषोऽसौ कौलिकं गुह्यं मन्त्रराजात्मतो लभेत्।
हृदयं सर्वपीठानां योगनीनां महोदयम्।।१९।।

शक्तिसङ्घट्टमन्त्रः

अधुना शक्तिसङ्घट्टं तृतीयं परमेश्वरम्।
परा च अपरा चैव तृतीया तु परापरा।।२०।।

अपरे संस्थिता ह्येता[3] इत्याद्या सर्वदेहिनः।
आसां मन्त्रोदयं वक्ष्ये स्वपिण्डेभोगमोक्षदा।।२१।।

शिवशक्तिमयं युग्मं पराबीजं सदारुणम्।
एतत् त्रिरक्षरं मन्त्रं परादेवी प्रकाशितम्।।२२।।

ज्ञानविज्ञानफलदमपरा च अतश्शृणु।
तदेवाद्यं परं युग्मं पराख्यं वरुणोर्ज्जितम्।।२३।।

सर्वगं दीपितं कृत्वा अपरा त्रितयोदितम्।
सर्वस्वहृदयान्तःस्थं - - - - - ।।२४।।

उपविश्यासने रम्ये - - - - - - - - ।
- - - - - - - - - - - - - - ।।२५।।

- - - - ष्टस्तु मदिरानन्द नन्दितः।
- - - - - - - - - - भैरवं वपुः।।२६।।

- - - - - प्रस्तरे भूतलं - - - - ।
- - - - - - - - - - - - - - - ।।२७।।

---

१. फ्रें ह्रीं क्रीं, ख.।
२. तृतीयं पूर्वं, इति मातृकापाठः। पूर्व पदस्याधिकत्वान्न गृहीतम्।
३. ह्येव, क.।

- - - स्व स्वभावस्वरूपेण शिवं भु- - -।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - ॥२८॥

- - - न्यसेत्पुण्यं ध्यात्वा प्रेतं जगद्गुरुम्।
- - - - - - - - सर्वकारणकारणम्॥२९॥

पूजयित्वा ततः पश्चात् स्वे-स्वे मन्त्रेण सुव्रते।
अर्चयेत्क्षेत्रपालेशं ततो धूपं सुकल्पयेत्॥३०॥

महास्नानम्

ततो वै स्थापयेल्लिङ्गं गन्धधूपाद्यनुक्रमैः।
दधिक्षीराज्यमधुकैर्दाक्षाश्चेक्षुरसासवान्॥३१॥

सुरादि चोत्तमैर्द्रव्यैर्दध्यमादि अनुक्रमैः।
पश्चाद्वेषोत्तमं[१] दिव्यं महास्नानं प्रकल्पयेत्॥३२॥

मणिरत्नादिमये पात्रे सौवर्णेराजतेऽपि वा।
कांस्ये चैवाथमृत्पहे तदभावे तु बिल्वजे॥३३॥

मध्यवृत्तिपदोद्भूतं गृहीत्वास्वकुलामृतम्।
कर्पूरागुरु संयुक्ते मृगजामलयान्वितम्॥३४॥

मूलमन्त्रोऽथ सत्कृत्वा मुनि संख्याविधानवित्।
अयमेवाथोऽयस्कान्ते लिङ्गमुत्तमम्॥३५॥

स्नात्वाचैवोपविष्टे वै लिङ्गवित्संख्यया शुभम्।
धर्माधर्मक्षये प्रोक्ते विशुद्धे विष्णवे परे॥३६॥

चिच्चि[२]तान्तर संल्लीने[३] ध्यात्वासङ्कट्टभैरवम्।
युक्ति युक्तं पिबेन्मद्यं पिङ्गलं निर्मलं रसम्॥३७॥

---

१. ० द्वे. शो., ख.।
२. चिच्चेता, ख.।
३. पितृणां, ख.।

तत्क्षणात् भवति[१] वीरो वलीपलितवर्जितः।
- - - - अपरे नित्यं द्वितीय इव भैरवः॥३८॥

एवं स्नानविधिङ्कृत्वा कर्णिकान्ते जगद्गुरुम्।
मुनिसंख्यमर्चयेद्देवं पराशक्तिसमन्वितम्॥३९॥

अष्टात्रिंशाक्षरं घोरं कालीं सप्तादशाक्षराम्।
पूजामन्त्रेण वो पश्चात् त्र्यक्षरे सर्वकामदे॥४०॥

भूतसंख्यार्चयेद्देवं द्विधाशक्तिं स्त्रिधा शिवम्।
पश्चात्क्रमेऽर्चयेत्सर्वा गुरुसिद्धादिपीठगाः॥४१॥

त्रिसङ्घट्टं ततः पद्मं द्वादशारं ततोऽर्चयेत्।
षट्कोणं परमं धाम सर्वशक्त्यालयोद्भवम्॥४२॥

गृह्य पुष्पाञ्जलिं पश्चाज्जानूंस्त्यक्त्वा तु भूतले।
विद्यायुग्मं ततः पूज्यं त्रिवर्णेशं सकृत् सकृत्॥४३॥

ततो वै समयाख्या तु भोगमोक्षार्थकामदा।
पञ्चषड्भिस्तु कोटीनां विद्यां समयमुत्तमाम्॥४४॥

या स्मृता राजराजेशी पञ्चशार्णापराकला।
मूलमुख्यतरादीप्ता धर्माधर्मक्षयङ्करी॥४५॥

यत्रोत्पन्नास्तु ते मन्त्रा अघोराद्याद्यनुक्रमाः।
सप्तादशाक्षराद्यादि मूलमुख्यतरान्तिमा॥४६॥

राजराजेश्वरी दिव्या तया विद्या पराम्बिके।
त्रिरावर्तप्रयोगेण नित्यमेवं प्रपूजयेत्॥४७॥

यया पूजितमात्रा वै सकृत्स्मृत्वाऽथवानघे।
अनेनैव शरीरेण सायोज्यत्वं प्रयच्छति॥४८॥

१. भवती, क.। भवते, ख.।

पश्चात्प्रकल्पयेद्रूपं पञ्चब्रह्मनवात्मकम्।
ततश्चाष्टाङ्गविधिना दण्डपातं प्रदक्षिणम्।।४९।।

कृत्वा दिव्योपहाराणि कर्मणा मनसा गिरा।
निवेदयेत्परे तत्त्वे पुष्पहस्तं प्रकल्पयेत्।।५०।।

धर्माधर्मं च (यत्सर्वं) पुण्यंपापं शुभाशुभम्।
कामक्रोधमलं लोभं शब्दस्पर्शरसास्तथा।।५१।।

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः[1]।
एतत्सर्वमशेषेण नानावृत्यौघमण्डलम्।।५२।।

पञ्चभूतात्मकं पिण्डं तत्त्व षट्त्रिंशबृंहितम्।
चतुर्विंशपदोपेतं षडध्वनिलयं परम्।।५३।।

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं पञ्चव्योमकम्।
आब्रह्मभुवनं सर्वं स्वकुलं कौलिकं पशुम्।।५४।।

निवेदयेत्परे ब्रह्मे[2] भैरवोत्सङ्गबृंहिते।
स्वदेहोत्कर्तनं कृत्वा [3]जुहुयात्सततं पदे।।५५।।

होममतत्समाख्यातं मन्त्रस्याप्यायनं महत्।
एतद्वै त्रिविधं कर्म मनः कायिकवाचिकम्।।५६।।

कृत्वा पूर्वं नयेत्पश्चात् महापशूपहारकम्।
सर्वाङ्गलक्षणोपेतं प्रत्यग्रं तु नरेश्वरम्।।५७।।

स्वस्नातं सुमहानन्दं बद्धनेत्रं पदं शुभम्।
तदनाप्तमशेषं वै अजं वा महिषं वृषम्।।५८।।

---

१. सद्कुलम्, ख.।
२. ब्रह्मणि, स्यात्।

मीनं चाथवरारोहे यत्किञ्चिज्जीवरूपिणम्।
सुशुष्कं चैव सुस्नातं सुरोमं श्रृङ्गिणं शुभम्।।५९।।

सर्वलक्षणसम्पूर्णं अक्षताङ्गमरोगिणम्।
ह्रीं क्षां क्षंः[1] तृतयेन आकर्णान्तं विलोकयेत्।।६०।।

ततो नेत्र परोद्धाटच कुलाचारसमन्वितैः[2]।
अर्घ्य पुष्पासवोपेतैश्शिरः पृष्ठे कटिस्थले।।६१।।

प्रेक्षयित्वा[3] प्रधानेन दिव्येन वेद्यरूपकैः।
यावन्न चालयेद्देहं तावन्न पातयेत् पशुं।।६२।।

ह्रीं ह्वूं[4] क्षः तृतीयेन वीरकर्म समाचरेत्।
- - - - - - - - - - - — काम विभूतिदम्।।६३।।

यदादौ चालयेद्वक्त्रं पश्चाद्देहं वरानने।
अशुभं तं[5] तु विज्ञेयं दुःखशोकामयप्रदम्।।६७।।

यदादौ धुनते वक्त्रं पश्चाद्देहं पुनश्शिरम्।
सिद्धिदं तत्र विज्ञेयं सप्तदेहविलम्बितम्।।६५।।

प्रवृष्टिं तु यदा मुञ्चे पुरीषाण्डानि शोभने।
समैर्वित्तागमैर्विन्द्या विषमं ज्ञानसिद्धिदम्।।६६।।

पुरीषं तु यदा मुञ्चे गृहीत्वावीरवन्दिते।
स्वकुलामृतसंयुक्तं मातृभृङ्गिरजान्वितम्।।६७।।

---

१. क्षं, क.।
२. समन्वितः। खं।
३. प्रोक्षयित्वा, ख.।
४. ध्रूं, क.।
५. ते. क.।

कुहाकुष्ठ समोपेतं मुनिसंख्याभिमन्त्रितम्।।६८।।
सप्तादशाक्षराविद्या नस्ये पाने पिबेद्दृदः।
आपादतलमुण्डा[1]न्तं सर्वाङ्गेषुसमालभेत्।।६९।।

चतुष्षष्टिविधैर्घोरैः कालकूटाद्यनुक्रमात्।
नाभिभूयत्यसौभद्रे शस्त्रास्त्रैस्तु स बाध्यति।।७०।।

स्तम्भयेत्सर्वसैन्यानि अन्यं[2] देवासुरोपमन्।
दिक्पूर्वाभिमुखो भूत्वा यदासौ धुनतेऽनधे।।७१।।

तदा अक्षागमं विन्द्यो दिव्यस्त्रीप्रियसङ्गमम्।
स्थानलाभं शरीरस्य वज्रकायवकं?[3] भवेत्।।७२।।

आग्नेयातु भवं घोरे वह्निसञ्ज्ञाननं भवेत्।
दुर्भिक्षं राष्ट्रसम्पातं राजा चैव विनश्यति।।७३।।

याम्यायां मरणं घोरं कष्टारं - - - - कृशम्।
अतिवृष्टिरनावृष्टिः भवते[4] वा सुमध्यमे।।७४।।

मन्त्रहस्ताद्भवेन्मृत्युरर्थ[6]हानिर्वियोगकम्।।७५।।
[7]कर्ताबन्धुजनैस्सार्धं दुष्टशत्रुभयं भवेत्।
सुभिक्षं वारुणे भागे सर्वसत्त्वसुसिद्धिदम्।।७६।।

- - - - गास्साधकेन्द्रस्य सर्वभूताश्चराचराः।
वायव्यां वज्र[8]संपातं विद्वेषोच्चाटमारणम्।।७७।।

---

१. मूर्धान्तं, ख.।
२. मन्त्रं देवासुरोपमः। क.।
३. बद्धकाकः वकं भवेत्। ख.।
४. भवति स्यात्।
५. वामसुव्रते, क.।
६. भूहानिर्वि. क.।
७. कटु, क.।
८. ०विद्यु०, मातृकयोः पाठः।

वज्रवाताशिरभयं? मारणे चार्थनाशनम्।
यत्किञ्चिदशुभं भद्रे तत्सर्वं वायवीदिशम्।।७८।।

उत्तरे ज्ञानसिद्धिस्स्या द्वश्याकर्षणमारणम्।
प्रसादः सर्व देवीनां सिद्धिश्चैक अनीप्सितम्।।७९।।

अधमान्मध्यमान्कामान्कौबेर्यां धुनते यदा।
ईशान्यभिमुखो भूत्वा यदासौ धुनते पशुः।।८०।।

अशेषं पुण्यपापं वै जन्मान्तरशतार्जितम्।
तदानरेश्वराद्योऽपि सुखं मुदन्ति मानवाः।।८१।।

मृत्युजिद्वज्रकायश्च वलीपलितवर्जितः।
सिद्ध्यन्ति विपुलान्कामानधमान्मध्यमोत्तमान्।।८२।।

साधकस्य न सन्देहो इत्याज्ञा पारमेश्वरी।
[1]एवञ्च लक्षणै र्ज्ञात्वा पशुं सर्वाङ्गकल्पितम्।।८३।।

घातयित्वा ततः पश्चाद्रक्तेनार्घ्यं विकीर्यते।।
छित्वा तस्योत्तमाङ्गं वै सर्वकारणकारणम्।।८४।।

श्रीकण्ठेति स विख्यातः पशूनाम्पतिरव्ययः।
पशुस्तत्रैव तं रूपं - - - - मोहितः।।८५।।

तस्य यद्दक्षिणं हस्तं पश्चाद्भूतेश्वरालयम्।
यत्रोत्पन्नं पुनस्तस्य पशुपञ्चकभूषितम्।।८६।।

ये जानन्ति मुखे पाणिमुद्रासंहारभैरवी।
नाम्ना करङ्किणी प्रोक्ता भुक्तिमुक्ति फलप्रदा।।८७।।

सिद्धिदासाधकेन्द्राणां स्वपिण्डेभोगमोक्षदम्।
सकृत् सं - क -र्षणात्तस्य दिव्यदेहो महाबलः।।८८।।

१. एवं वै, ख.।

दक्षिणाङ्गादि पद्माभ्यां मुद्रा - - - सर्वबृंहिते।
समासकृत्तिसहितमपक्वं च सु सं- - - -॥९०॥

कल्पयेत्तुपरे ब्रह्मणीश्वरे सर्वसमन्विते।
पूर्वोक्तं विविधाकारन्नैवेद्यं तत् प्रकल्पयेत्॥९१॥

द्वैताद्वैतसमोपेतं भक्ष्यभोज्यान्नपानकम्।
तत्रैवाहारकं[1] कार्यं सुतृप्तस्तु मुदान्वितः॥९२॥

भुक्तोच्छिष्टं भवेत्किञ्चित्पशूनां गोपयेत्सदा।
मम यज्ञे[2]ऽथवा भद्रे अगाधेऽम्भसि निःक्षिपेत्॥९३॥

गीतनृत्योपहाराद्यैः कर्तव्यः भैरवोत्सवः।
अत ऊर्ध्वं शयनं कार्यं प्राणशक्तिजपार्चनम्॥९४॥

एकद्वित्रिचतुः पञ्च सप्तभिर्वासवोऽथवा।
एतद्यागवरं कार्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥९५॥

स्थित्यर्थन्तु अतश्चोर्ध्वे कर्तव्यं तु विसर्जनम्।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं गुरुणा दक्षिणां ददेत्॥९६॥

यः पृथिव्येश्वरो राजा सप्तद्वीपान्ससागरान्।
प्रविश्य सप्तभागं वै पृथिव्यां सम्प्रयच्छति॥९७॥

द्वीपभोक्ताऽथ सुभगे मात्रालं सम्प्रयच्छति।
तद्भोक्ता सप्तभिर्ग्रस्त एकः सप्ताधिपः[3] प्रिये॥९८॥

तद्भोक्ता सप्तभागं वै यथावित्तानुसारतः।
शुद्धजास्वनदा सा च शतलक्षायुतं जपम्॥९९॥

---

१. ०कौ., क.।

२. यज्ञो, ख.।

३. एक सप्ताद्विपः., क.।

मणिरत्नसमायुक्तं गुरुपादा - - निवेदयेत्।
पुत्रदारादि चात्मानं हस्त्यश्वरथराज्यकम्।।१००।।

येन सन्तुष्यते नाथ तत्सर्वमविकल्पितम्।
भक्तियुक्तेन मनसा गुरवे विनिवेदयेत्।।१०१।।

शिवो ह्याचार्यरूपेण लोकानुग्रहकृद्भवेत्।
न जानान्ति नरामूर्खा[१] अज्ञानतिमिरावृताः।।१०२।।

तेन तुष्टेन वै साक्षाद्देवदेवो जगद्गुरुः।
सिद्धिमातृगणोपेतः सर्वकामविभूतिदः।।१०३।।

भवते साधकेन्द्राणां पराश (क्तिः सुसिद्धिदा)।।
(एव)न्ते सर्वमाख्यातमर्चनं कौलिकं क्रमे।।१०४।।

अन्तान्तं हृदयं दीप्तं स रहस्यं प्रकाशितम्।
किमन्यत्पृच्छते भद्रे नास्तिज्ञानमनुत्तमम्।।१०५।।

।। इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्देऽष्टमः पटलः[२] ।।

---

१. मूढा, ख.।

२. कदाचित्सप्तमपटलस्यान्त्या अष्टमपटलस्याद्याः श्लोकाः लुप्ताः तस्माद्द्वयोपटलयोः विषया एकत्रोपस्थापिताः।

।। नवमः पटलः ।।

अघोरस्वच्छन्दमन्त्र जिज्ञासा

श्री देव्युवाच

त्वया यत् सूचितं पूर्वमघोरं मन्त्रनायकम्।
त्रिरक्षरं महादीप्तं [1]स्वच्छन्दं कथय प्रभो।।१।।

श्री भैरव उवाच

त्रिवर्णं तु महादीप्तं पूजामन्त्रं परं पदम्।
मतं यक्षकुमारीणां द्वितीयं वटयक्षिणी।।२।।

तथा स्वायम्भुवे लोके चतुर्थे तु परे पदे।
महामदनसारे वै तथा श्री भैरवामृते।।३।।

योन्यर्णवे तथा घोर[2]करङ्किण्यामतोत्तरे।
एतेषां कथितं पूर्वं मन्त्रनाथं तु कीलितम्।।४।।

दारितं हृतवीर्यं वै साधकानां निरर्थकम्।
पञ्चाशत्कोटि विस्तीर्णे अस्मिन्यातालपिङ्गले।।५।।

मन्त्रराजं स्मृतं दीप्तं सस्फुरन्तमकीलितम्।
संस्थितं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुवीरेन्द्रवन्दिते।।६।।

मन्त्रोद्धारक्रमः

शून्यान्तं शून्यमारूढं शून्यान्तोपरिसंस्थितम्।
रुद्रेण भूषितं कृत्वा नादविन्दुकलान्वितम्।।७।।

---

१. पूजामन्त्रं परं पदम्। ख.।
२. घोरे, ख.।

वह्निसम्पुटमध्यस्थं खान्तयुग्मं न्यसेत्क्रमात्।
सवर्गं षष्ठमारूढं नादविन्दुकलान्वितम्॥८॥

द्वितीयं कथितं बीजं साक्षाद्गौरीश्वरं परम्।
अधोर्ध्ववह्निमाक्रान्तं हान्तं रुद्रासने स्थितम्॥९॥

कल्पशून्य कलोपेतं तृतीयं[१] भैरवस्स्वयम्।
खेटिकान्ते मयाख्यातं कर्णान्ते च अतश्शृणु॥१०॥

एषोऽसौ कौलिकः दीप्तः स्मरणार्तिविनाशनः।
सर्वरोगप्रशमनः सर्वदुःख क्षयङ्करः॥११॥

सर्वाधिकार फलदः सर्वकामविभूतिदः।
भक्षयेत्सर्वरोगाणि व्याधीन्श्च विदारयेत्॥१२॥

हरते सविषान् सर्वान्घोरान्नष्टादशोद्धवान्।
ग्रसते स परे सर्वान्सकृत्स्मृत्वा सुरासुरान्।१३॥

भक्षयेद्ग्रासमेकेन आब्रह्मभुवनान्तिमम्।
व्याधिः पञ्चात्मकं विश्वं सम्पूर्णं घोरसागरम्॥१४॥

धर्माधर्म समोपेतं कोष्ठलूतादि गच्छतैः?।
बृंहितं व्याधिभिस्सर्वैर्ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥१५॥

यस्यानुस्मृतमात्रेण शतावर्तेन लीलया।
तृणवद्भस्मवज्जायेत्कालाग्निर्ज्वलते रविः॥१६॥

तदा तस्येश वै संज्ञा व्याधिभक्ष इति स्मृतः।
यावन्नभवते रुद्रो यावन्नमोक्षभाजनः॥१७॥

यावन्नानेन देहेन पिण्डसिद्धिमवाप्नुयात्।
तावन्नप्राप्यते सर्वं कुलं कौलं निरर्थकम्॥१८॥

---

१. बीज स्वरूपम् - ह्रूँ ज्रूँ क्ष्रूँ इति।

मतवैशेषिकं भद्रे यज्ज्ञात्वा सिद्ध्यते ध्रुवम्।
तत्पदं कथितं तुभ्यं न चैवान्यस्य कस्यचित्॥१९॥

अनेनार्चयते नाथमष्टत्रिंशाक्षरं परम्।
वृद्धकालीसमायुक्तं भैरवं सर्ववृंहितम्॥२०॥

॥ इति श्री भैरवस्यापि अगोप्योनरकं व्रजेत्॥
॥ इति श्री कौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे नवमः पटलः॥

।। दशमः पटलः ।।

दीक्षा जिज्ञासा

ॐ दीक्षां ब्रूहि समासेन पुण्यपापक्षयङ्करीम्।
महादीक्षेति विख्यातां स्वच्छन्दे भोगमोक्षदाम्।।१।।

दीक्षाभेदकथनम्

श्री भैरव उवाच

शृणुष्वैकमनाः भद्रे मतार्थं सरहस्यकम्।
यन्नकस्यचिदाख्यातं तद्वक्ष्यामि पदे परम्।।२।।

अष्टादशविधा दीक्षा पुरा प्रोक्ता स्वयम्भुवा।
तन्मध्ये चोत्तमा दीक्षा त्रिविधा (मूल) जा शृणु।।३।।

अधमामध्यमा चैव तत्तु सा च तृतीयका।
परा च अपराचैव तृतीया च परापरा।।४।।

पराचैवोत्तमा दिव्या शाम्भवी सर्वकामदा।
सर्वाधिकारफलदा निःस्वनानन्दसिद्धिदा।।५।।

शाक्ता चैवा परा ख्याता वेदचक्रक्रमे स्थिता।
ज्ञात्वा शास्त्रक्रमाचारं गुरुवक्त्रोपदेशकम्।।६।।

सोमार्काग्निस्ततोत्थं (हि) सङ्घट्टात्तु[1] परे पदे।
खान्तचक्रप्रवाहेण लीनं भैरवमण्डले।।७।।

[2]परब्रह्माणि चात्मानं व्युत्क्रमोत्क्रम योगतः।
अनेनाभ्यासयोगेन पुण्यपापक्षयो भवेत्।।८।।

---

१. सङ्घट्टं तु, ख.।

२. परब्रह्मे तु, मातृकापाठः।

[1]नालिकैकान्तरे भद्रे तीव्रमावेशकं भवेत्।
आन्दमुद्भवं कम्पं निद्राघूर्त्तिस्तु पञ्चमा।।९।।

अवस्था जायते तस्य अचिरात् खेचरो भवेत्।
आणवी कथिता ह्येषा दीक्षा शाक्ता अतश्शृणु।।१०।।

शाक्ता दीक्षा

शिवशक्तिमयं पूर्वं कृत्वा सङ्घट्टकं परे।
चित्कलासहसोत्थाय त्रिविधेनान्तरात्मना।।११।।

ऊर्ध्वाधोदीप्तिकुटिला शिवसूत्रं ततो स्मरेत्।
भित्वाद्यं सकलाधारं यावच्चिद्व्योम भैरवम्।।१२।।

कादिभान्त परारूढं प्रविश्याधारमण्डले।
परदेहे परं जीवं शक्तिसङ्घट्टमध्यगम्।।१३।।

पारम्पर्यक्रमेणैव नादेनाचाम्य[2]वेदयेत्।
चालनावेशनं कृत्वा दिव्ययोगं प्रवर्तयेत्[3]।।१४।।

अनेन क्रमयोगेन योजनानां शतैरपि।
ज्ञात्वा श्रीशक्तिसङ्क्रामं सदेवासुरमानुषम्।।१५।।

वेदयेन्नात्र सन्देहः पातयेत्पर्वतान्यपि।
चक्रात्मसङ्क्रमयोगेन छिन्नमूलइव द्रुमः।।१६।।

पतन्ति देहिनः सर्वे - - - - नु क्षयं व्रजेत्।
- - - - चारां भाषां प्रेक्षां स्वरां स्मरणम्।।१७।।

ताण्डवा विविधाकारा अतीतानागतास्तथा।
वर्तमानाधिकं सर्वं शक्तिवेधस्वभावतः।।१८।।

---

१. नाडि० स्यात् डलयोरभेदात्।

२. नादेनादास्य, ख.।

३. प्रवर्तते, मा.पा.।

निग्रहानुग्रहे शक्तिश्शक्तिविद्धस्य जायते।
एषा शाक्तोद्भवा दीक्षा पूर्व पश्चिमचो[1]त्तरे।।१९।।

दक्षिणे आन्वयैः प्रोक्ता अधिकार प्रसिद्धिदा[2]।
व्यापृता सर्वतन्त्रेषु स्वच्छन्देऽस्मिन्प्रकाशिता।।२०।।

शाम्भवी दीक्षा

अन्यासु अपरादीक्षा साम्प्रतं शाम्भवी स्मृता।
कुलाचारं समोपेतं पुष्पमेकं वरानने।।२१।।

गृहीत्वा सव्यहस्तेन चन्द्रार्काग्नि कलान्तगम्।
जीवं जीवसमायुक्तं जीवस्योपरि संस्थितम्।।२२।।

जीवसम्पुटमध्यस्थं जीवनातिपदोत्थितम्।
भित्वा जीवकलाधारं स्थानं श्रीषोडशान्तिमम्।।२३।।

अष्टोत्तरशतावर्ते मन्त्रनाथे त्रिरक्षरे।
कृत्वा वै तत्र सङ्क्रामं ध्रुवान्ते ताडयेत्क्रमात्।।२४।।

स विद्धः पतते भूमौ वज्राघातमिवाचलम्।
पञ्चपञ्चत्वतां याति षष्ठां चैव पदे पदे।।२५।।

इति सत्यं महालक्ष्मि रुद्रस्यापि हि लीलया।
पातयेत्तत्त्वविद्धीरो इतरेषां च का कथा।।२६।।

स्वेच्छा वापि वरारोहे पुनः सङ्क्रामयेदसून्।
तदेव पूर्व विधिना - - - - - - - - -।।२७।।

- - - - - - - - - - कुरुते नात्र संशयः।
भूतं भव्यं भविष्यन्तं ज्ञायते वर्तमानकम्।।२८।।

---

१. गो., ख.।
२. अधिकाराक्षसिद्धिदा, मा.पा.।

सर्ववाङ्मयवेत्ता हि कविर्वागीशवद्भवेत्।
वलीपलितनिर्मुक्तो मृत्यजिद्वज्रकायवान्।।२९।।

रूपेण पञ्चसहितः द्वितीय इव शङ्करः।
वल्लभस्सर्वदेवीनां स्त्रीणां कामार्णवोपमम्।।३०।।

अजितस्समरे नित्यं कालाग्निवपुषस्सदा।
दृश्यते सर्वभूतेभ्यो इत्याह परमेश्वरः।।३१।।

एषा वै शाम्भवी दीक्षा न ज्ञाता केनचित्प्रिये।
गोपिता कुलकौलेषु मतयामलतन्त्रकैः।।३२।।

यस्मिन् कौलागमे ख्याता[1] त्वत्प्रीत्यावीरवन्दिते।
महादीक्षेति विख्याता क्लेशायासबहिष्कृता।।३३।।

निर्वाण फलदा प्रोक्ता निग्रहानुग्रहार्थदा।
सर्वाधिकार सुभगा स्वपिण्डे भोगमोक्षदा।।३४।।

।।इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे दशमः पटलः।।

---

१. ज्ञातं, क.।

॥ एकादशः पटलः॥

श्री देव्युवाच

सूचिता ते महामुद्रा मोदिता सर्वकामदा।
कथय स्व प्रसादेन देव चन्द्रार्धशेखर॥१॥

महामुद्रोपदेशः

श्री भैरव उवाच

अकथ्या सा महामुद्रा योगिनीनां महोदया।
गोपिता सर्वकौलेषु मतयामलतन्त्रकैः॥२॥

कुलगर्भैश्च विविधैर्न ज्ञाता केनचित् स्फुटा।
भोगहस्ते मयाख्याता मन्त्रगर्भा पराकला॥३॥

अस्मिन्कौलागमे दिव्ये मुद्राद्या पारमेश्वरी।
सस्फुरन्ती महादिव्या योगिनीनां सुसिद्धिदा॥४॥

स्थूला[1] विश्वतनुर्देवी सूक्ष्मा चिन्मा(त्र) धर्मिणी।
परा नित्योदितानन्ता ब्रह्मसत्तास्वरूपिणी॥५॥

खभूपातालदिग्व्योमव्यापिनी सर्वतोमुखी।
एषा सा परमा मुद्रा कौलिकी भोगमोक्षदा॥६॥

भोगहस्तेति विख्याता स्वच्छन्देस्मिन् द्वितीयके।
संस्थिता सम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वं वीरवन्दिते॥७॥

जीवसम्पुटमध्योत्था मन्त्रगर्भा[2] पराकला।
सर्पवत् कुटिलाकारा भूरिकालानलोपमा॥८॥

---

१. मूला, क.।

२. मन्त्रयन्त्र०, ख.।

भित्वाषडध्वनिलयं च क्रान्तं षोडशादिकम्।
तत्क्षणाज्जायते तीव्रं रोमाञ्चमघनाशनम्।।९।।

ईषत्कुलामृतोपेतं महावामामृतोत्तमम्।
किञ्चित्सुरासवोपेतमेकं वीरमथापि वा।।१०।।

गृहीत्वा व्योमदेशे तु त्रिधामेनान्तरोदितम्।
मन्त्रयुग्मं तु वै कृत्वा चिद्व्योमस्थं परे पदे।।११।।

स्फूर्जद्रेणुरिवाकारं चलत्कल्लोलपाण्डुरम्।
मध्यदृष्टिनिरोधेन व्योमातीतं विराजते।।१२।।

तृप्यन्ति योगिनीं सोमां सिद्धां मात्रांश्चराचराम्।
सहजां पीठजां दिव्यां कुलकौलसमुद्भवाम्।।१३।।

खेचरीं भूचरीं सर्वां गोचराद्यादि दिक्चरीम्।
द्वादशक्रमभेदेन चतुष्षष्टिमनामयाम्।।१४।।

सप्तादशपदोद्भूतां दिव्यदिव्यां चराचराम्।[1]
अदृष्टविग्रहा शान्ता व्यक्ताव्यक्तपदोद्भवा।।१५।।

सानन्तादि शिवान्तान्ते याः स्थिताः दिव्यमातरः।
सर्वास्ता नन्दिता यान्ति सर्वसत्त्वाश्चराचराः।।१६।।

पानमुद्रा प्रभावेण नित्यतृप्ता मदान्विताः।
भवन्ति साधकेन्द्राणां खेचराद्यानि साष्टधा।।१७।।

प्रयच्छन्त्येप्सितान्कामान्नधमान्मध्यमोत्तमान्।
अन्यथा तर्पणं तासां महाकल्पायुतैरपि।।१८।।

दत्वा महासवं पूर्णं समुद्रेणैव जायते।
इति सत्यं परं भद्रे महामुद्रा प्रभावतः।।१९।।

---

१. श्लोक १३-१५ क. द्वितीया स्थाने प्रथमाविभक्ति-र्ज्ञेया।

तृप्तास्सिद्धिं साधयन्ति साधकैर्मानसेप्सिताम्।
एषा सा शाम्भवी मुद्रा सर्वज्ञत्वफलप्रदा॥२०॥

शिवसद्भावजननी परब्रह्मस्वरूपिणी।
भैरवेण समायुक्ता भैरवी सर्वबृंहिता॥२१॥

जीवसम्पुटमध्यस्था चन्द्रार्काग्निकलान्तगा।
सरहस्या मया ख्याता स्वपिण्डे भोगमोक्षदा॥२२॥

अनया सहिता वीराः कुलकौलसमुपासकाः।
नित्यं कौलक्रमैर्भक्ता पशवस्ते प्रकीर्तिताः॥२३॥

न सिद्ध्यन्ति न मुञ्चन्ति शिरश्छिन्नास्तु ते जनाः।
यस्याङ्गैः पतते पानं महामुद्राविमूर्च्छितम्॥२४॥

धर्माधर्मक्षयं गत्वा छिन्नमूल इव द्रुमः।
संविद्धः पतते भूमौ सत्यं नास्त्यत्र संशयः॥२५॥

पशूनां गोपयेद्य[1]त्तन्मुद्रैषा पारमेश्वरी।
गोपनात्सिद्ध्यतेत्याशु अगोप्यान्नरकं व्रजेत्॥२६॥

॥ इति श्री महाकौलागमेवृद्धस्वच्छन्दे एकादशः पटलः॥

१. यत्नान्मुद्रैषा, ख.।

॥ द्वादशः पटलः॥

श्री देव्युवाच

ध्यानं श्रीदेवदेवस्य दिव्यरूपधरस्य च।
स्वरूपं मूलजं दिव्यं न श्रुतं कथय प्रभो॥१॥

यं ज्ञात्वा मन्दपुण्योऽपि सिद्धिं प्राप्नोति मानवः॥२॥

श्री स्वच्छन्द भैरवस्वरूपम्

श्री भैरव उवाच

स्वरूपं कौलिकं दिव्यं [1]स्वस्वभावं तु मूलजम्।
परं नित्योदितानन्तं भैरवं सर्वबृंहितम्॥३॥

ध्यायेत्प्रेतासमारूढं चन्द्रार्काग्निकलान्तगम्।
जीवसम्पुटमध्यस्थं देवं[2] चिद्व्योमभैरवम्॥४॥

स्वबाह्याभ्यन्तरान्तस्थं स्वस्थानस्थं स्वयम्भुवम्।
स्थूलसूक्ष्मपरं पारं सर्वावस्थान्तरोदितम्॥५॥

त्रिनेत्रं भीमवदनमेकविंशेक्षणं विभुम्।
सप्तवक्त्रं परं ब्रह्म अष्टाविंशभुजान्वितम्॥६॥

दक्षिणे नारसिंहं वै वाराहं चोत्तरे विभुम्।
अजवक्त्रं खमार्गस्थं पञ्चमं परमं पदम्॥७॥

तस्योर्ध्वे [3]यत्परं षष्ठमीशानं शिवमव्ययम्।
लोकनाथेति विख्यातं ज्ञानघूर्णितलोचनम्॥८॥

---

१. क. पुस्तके पादो नास्ति।

२. दिव्यं, ख.।

३. यत्परे षष्ठे, ख.।

सप्तमं यत्परं दीप्तमधोमुखविलम्बितम्।
कालाग्नि निलयाधारं वज्रज्वालाकुलेक्षणम्॥९॥

शिवाननं शिवारावं जीवाख्यं जीवरूपिणम्।
जीवस्याकर्षणं नाथं निर्बीजं कथितोद्भवम्॥१०॥

घोरान्धकारवपुषं भिन्नाञ्जनचयप्रभम्।
द्विरेफकोकिलाकारं पशुकज्जलसन्निभम्॥११॥

द्रवत्कनकभे नन्दि बुद्बुदावर्तलोचनम्।
ततः पञ्चनिभैर्दंष्ट्रैर्कोटराक्षं महौजसम्॥१२॥

महाचिपिटनासोर्ध्वं स्थित्युत्पत्तिलयङ्करम्।
ज्वलद्भ्रूभङ्गिपिङ्गार्चिर्विद्युज्जिह्वं कपालिनम्॥१३॥

दारितास्यं महाभीमं प्रज्वलन्तोर्ध्वकेशकम्।
सितभस्मविलिप्ताङ्गं जटाखण्डेन्दु मौलिनम्॥१४॥

वक्त्रज्वाला जटाज्वाला व्योमज्वालासु प्रज्वलम्।
ज्वलन्ति चायुधास्सर्वे मुण्डमालाज्वलावृतम्॥१५॥

प्रेतकर्णावलम्बन्तं प्रेतस्रग्दाममण्डितम्।
भ्रुकुटीकरालवदनं चित्कलावलिमेखलम्॥१६॥

वृश्चिकैरग्निवर्णान्तैर्हारं कण्ठे विराजितम्।
भूरिकालानलप्रख्यं भूरिसोमार्कवर्चसम्॥१७॥

कपालमालाभरणं खड्गखेटकधारिणम्।
कपालखट्वाङ्गधरं वरदाभयपाणिकम्॥१८॥

वज्रशक्तिधरं देवं घण्टाडमरुपाणिनम्।
छुरिकामुण्डहस्तं च करङ्ककरदारुणम्॥१९॥

१. पारान्ध., ख.।

कमण्डलुधरं देवं दण्डपाशाङ्कुशोदितम्[1]।
शङ्खचक्रगदाहस्तं त्रिशूलोद्यत पाणिनम्॥२०॥

शरचापकरं व्यग्रं पाश[2]पट्टिशधारिणम्।
बीजपूरकहस्तं वै महापरशुपाणिनम्॥२१॥

भोगभूषितसर्वाङ्गं भोगहस्तं भवोद्भवम्।
भोगयज्ञोपवीताङ्गं भोगकङ्कणनूपुरम्॥२२॥

भोगिन्या हृदयाधारं भोगिभिर्गर्भिणीवृतम्।
भोगस्था मातरस्सर्वा निर्भोगं परमेश्वरम्॥२३॥

भोगपर्यङ्कशयनं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
भास्वरूपं भवाधारं भवभावहरं हरम्॥२४॥

भचक्रान्तरमारूढं भैरवं सर्वबृंहितम्।
भोगमोक्षार्थफलदं स्वच्छन्दं व्याधिनाशनम्॥२५॥

स्मरजार्तिहरं प्रोक्तं सर्वकामविभूतिदम्।
यादृशं भैरवं रूपं भैरव्यास्तादृशं विदुः॥२६॥

ज्ञानक्रियेच्छाविभवं चतुर्धासंव्यवस्थितम्।
इत्थं रूपधरं दिव्यमिच्छाख्यं सर्वसिद्धिदम्॥२७॥

शुद्धकुन्देन्दुधवलं [3]ज्ञानाख्यं तु द्वितीयकम्।
रक्तालक्तकवर्णाभं क्रियाख्यं तद्द्वितीयकम्॥२८॥

शुद्धजाम्बूनदप्रख्यं विभवं पीठवर्णकम्।
ज्ञानाख्या चोत्तमासिद्धिः क्रियाख्या मध्यमास्मृता॥२९॥

---

१. पाशाङ्कुशोद्यतं, ख.।
२. प्रासु, ख.।
३. ज्ञानाख्येतद्द्वितीयकम्, ख.।

विभवाख्याधमाप्रोक्ता सर्वमेतद्विजृम्भिता।
इच्छारूपस्य सुभगे सकृत्स्मृत्वा तु प्राप्यते॥३०॥

इति सत्यं पुनस्सत्यमित्याज्ञा पारमेश्वरी।
एतत्ते कथितं गुह्यं ध्यानं देवस्य चान्तिमम्॥३१॥

विश्वतन्त्रधरं देवं भूरि भैरव भास्करम्।
ध्यात्वा शून्यमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तिकम्॥३२॥

यन्त्र विधानम्

तद्व्योम चिन्तयेन्नाथं त्रिधामोदरमध्यगम्।
द्वात्रिंशारं तु यच्चक्रं तद्विद्धि सूर्यमण्डलम्॥३३॥

तन्मध्ये द्वादशारं वै तद्विद्धि सोममण्डलम्।
तदन्ते त्रिदलं पद्मं प्रोक्तं तद्वह्निमण्डलम्॥३४॥

तत्सङ्घट्टपदं वीक्ष्य मध्यस्थं परमेश्वरम्।
अनाख्यं तु मया ख्यातं परं नित्योदितं विभुम्॥३५॥

स्वस्वभावं स्वधाम्निस्थमुदयास्तविवर्जितम्।
परापरपदान्तस्थं स्वानन्दानन्दबृंहितम्॥३६॥

अकथ्यं परमार्थेन सद्यः प्राणहरान्तिमम्।
प्रिये प्रीत्या मयाख्यातं योगिनीनां महोदयम्॥३७॥

खेचरीणां मुखाम्नायं गुरुवक्त्रोपदेशकम्।
पारम्पर्यक्रमायातं मुख्यं श्रीशाक्तशाम्भवम्॥३८॥

कथितं [2]तु परं रूपं परापरविभूषितम्।
न ज्ञातं केनचिद्भद्रे स्फुटं श्रीपारमेश्वरम्॥३९॥

---

१. दिव्यं० ख.।
२. कथितेत्थं, क.।

गोपितं कुलकौलेषु तन्त्राद्यैर्मृतयामलैः।
अस्मिन्कौलागमे ख्यातं सस्फुरन्तमकीलितम्॥४०॥

ध्यात्वा सम्पूजयेन्नित्यं पूजान्ते तु पुनर्जपेत्।
जपध्यानार्चनात्सम्यक्छिवो क्षिप्रं प्रसीदति॥४१॥

इति सत्यं परं गौरि नान्यत्र हरभाषितम्॥४२॥

॥ इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे द्वादश पटलः॥

॥ त्रयोदशः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

स्वामिंस्त्वत्प्रसादेन ज्ञातं मे परमं पदम्।
नास्ति मे तृप्तिरद्यापि अमृतस्य महेश्वर॥१॥

जपं तु कीदृशं नाथ कौलिकं सर्वकामदम्।
कीदृशं चक्ष्व सूत्रं वै एतदाचक्ष्व मे प्रभो॥२॥

श्री भैरव उवाच

सरहस्यं हृदयं दिव्यं सिद्धकौलं तु शाम्भवम्।
योगिनीनां परं मन्त्रं यद्यामलेषु च गोपितम्॥३॥

सर्वस्वं तु मुखाम्नायं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
सर्वदुःखप्रशमनं त्रैलोक्याश्चर्यसिद्धिदम्॥४॥

सर्वाधिकारफलदं सर्वकामविभूतिदम्।
सर्वापद्धरं नित्यमलक्ष्मितमनाशनम्॥५॥

सर्वसौभाग्य[1]जननं सस्फुरन्तमकीलितम्।
स्वस्थानस्थं जपेन्मन्त्रं प्राणगत्योदितं परम्॥६॥

कौलिक मन्त्रोद्धारः

जीवसम्पुटमध्यस्थं सोमार्काग्निकलानुगम्।
तत्रोक्तं तु जपेन्मन्त्रमेकीकृत्यकरम्भकम्॥७॥

जप विधिः

सनो मन्त्रात्मतत्त्वञ्च रुद्रत्व[2]न्नं विलम्बितम्।
शुद्ध दीपशिखाकारं स्फुरन्नाडीं प्रवेशयेत्॥८॥

---

१. सर्वसौभाग्यच०, क.।

२. रुद्रतेन०, ख.।

षडध्वचक्रकुहरं भित्वाब्रह्माण्डखर्परम्।
प्रविलीनं परे स्थाने भैरवे सर्वबृंहिते॥९॥

जपेन्मन्त्रवरं शक्त्या प्रोक्तं मणिगणा इव।
तत्रारूढं स्रवन्तं वै अमृतौधतरङ्गिणीम्॥१०॥

तेनैव प्लावितं देहं शिवाद्यावीचिगोचरम्।
रोमकूपं निवार्य तं ध्यायेन्नित्यं परामृतम्॥११॥

व्युत्क्रमोत्क्रमयोगेन कुरुष्वेतज्जपं प्रिये।
जपान्ते चिन्तयेद्देहं मृतकुम्भकरार्पितम्॥१२॥

परस्थानात्परे देहे प्रविशन्तं स्वकं तनुम्।
शुद्धकुन्देन्दुधवलं पराशक्तिसमन्वितम्॥१३॥

परं नित्योदितं धाम भैरवं सर्वबृंहितम्।
मात्रा चैवार्धमात्रा वा पादमात्रा अथापि वा॥१४॥

अष्टोत्तरसहस्त्रां वा यथाकामोऽथवा नदो।
त्रिसन्ध्यन्तु जपेन्मन्त्रं निशाकाले विशेषतः॥१५॥

सात्त्विकेनाक्षसूत्रेण मन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम्।
भवते नात्र सन्देहस्सत्यं भैरवभाषितम्॥१६॥

अक्षसूत्रभेदकथनम्

त्रिविधं चाक्षसूत्रं वै उत्तमाधममध्यमम्।
परं चैवोत्तमं प्रोक्तं सप्ताविंशाण्डकं प्रिये॥१७॥

द्विगुणमपरञ्चैव मध्यमं चैवमुत्तमम्।
- - - - - शताण्डेनाधमं त[1]त्परापरम्॥१८॥

---

१. तं० ख.।

मेरुयुक्तोऽथवा हीनं रन्तव्यं रक्तसूत्रकम्।
चैत्यवत् सिद्धिदं प्रोक्तं चित्कलावलिग्रन्थितम्।।१९।।

वामहस्तेऽथवा सव्ये व्योममुद्राकरार्पिते[1]।
जप्तव्यं सततं मन्त्रं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।२०।।

एतेषां चोत्तरं दिव्यं राजराजेश्वरं परम्।
उभयोर्हस्तयोर्दिव्यमक्षसूत्रं परं पदम्।।२१।।

करमालाविधिः

संस्थितं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं वामलोचने।
प्रत्येकाङ्गुलि मध्ये वै रेखास्त्रीणि प्रकीर्तिता।।२२।।

चतुर्थी तु परब्रह्मणि[2] रेखान्ते व्योमगोचरे।
एवं पञ्चाङ्गुलीः ख्याता पञ्चब्रह्म वरानने।।२३।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एताः पञ्च महाविद्याः पञ्चभूतेश्वरालयाः।।२४।।

संस्थिता सर्वतत्त्वानां नैव जानन्ति मोहिताः।
त्रितत्त्वसहितास्सर्वे पञ्चभिः पार्थिवाद्यकाः।।२५।।

ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रा रेखात्रयमिदं प्रिये।
चतुर्थी या स्मृता रेखा ख स्वरूपमनाहता।।२६।।

सोमार्काग्निकलान्तस्था काली सप्तादशी तु सा।
परान्तः पातिनी प्रोक्ता द्विसङ्घट्टपदाक्षरा।।२७।।

प्रथमातु परा रेखा सृष्टिक्रममुदाहृता।
स्थितिक्रमा द्वितीया तु अपरा सातु देवता।।२८।।

---

१. ०ल्पिते० मा. पा.।
२. परे ब्रह्मे. मा. पा.।

तृतीया तु परा प्रोक्ता क्रमं संहारं तु तत्।
तानि क्रमाच्चतुर्थी वै सैव वामक्रमं विदुः॥२९॥

अनाहतपदान्तस्थं चतुर्थं श्रीक्रमान्तिमम्।
ज्ञानाख्या प्रथमाज्ञेया क्रियार्था तु द्वितीयका॥३०॥

विभवाख्या तृतीया तु इच्छाख्या तु चतुर्थिका।
(पिण्ड)स्था परमा प्रोक्ता रविरेखातु सा स्मृता॥३१॥

पदस्था सोम रेखा तु द्वितीया[१] अमृतोपमा।
रूपस्था तु तृतीया वै अग्निरूपा तु सा स्मृता॥३२॥

रूपातीता चतुर्थी वै ख स्वरूपा नखानुगा।
स्वस्वभावस्वधाम्निस्था चतुर्थी पाञ्चभौतिका॥३३॥

घूराङ्गुलिगता ज्ञेया शिवशक्तिमतोदया[२]।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चैव तु पञ्चमी॥३४॥

तिथिः प्रतिपदाद्यादि रूपं च पदरूपिणी।
संस्थिताक्षमयी माला शक्तिरूपा मनोन्मनी॥३५॥

अक्षाश्चैवेन्द्रियाः प्रोक्ता शब्दाद्याः पञ्चभिः पराः।
त्रिसङ्घट्टपदैर्व्योम्नि मनो मन्त्रात्मतन्तुना॥३६॥

बद्धवा प्रवेशयेद्दुर्गे भैरवे सर्वबृंहिते।
मुक्ता हमिति वै ज्ञात्वा मणिवन्निर्मलोपमः॥३७॥

जीवादित्वमिति भद्रे को न मुच्येत बन्धनात्।
संसार सागराद्घोरान्मन्दपुण्योऽपि लीलया॥३८॥

---

१. तृतीया, क.।
२. मतोभया, ख.।

शाक्ते चैव पराशक्त्या स योग्यत्वमवाप्नुयात्।
शाम्भवेन परं [1]ब्रह्मण्यनेनैव कलेवरे॥३९॥

लीयन्तेऽत्र न सन्देहस्सत्यं भैरवभाषितम्।
शाम्भवं दक्षिणं हस्तं शाक्तं चैवापसव्यकम्॥४०॥

शिवमध्यगता शक्तिश्शक्तिमध्यगतः शिवः।
उभयोरन्तरं नास्ति वायुरम्बरयोरिव॥४१॥

शिवस्य जननी शक्तिस्सा च शक्तिः शिवात्मिका।
शिवेन रहिताशक्तिस्सा च शक्तिः शिवात्मिका[2]॥४२॥

उभयोरन्तरं नास्ति यथा सलिलवह्निना।
एवं ज्ञात्वा वरारोहे वामहस्तेऽथ दक्षिणे॥४३॥

सृष्टिसंहारयोगेन जपं कुर्याद्विचक्षणः।
एषोऽसौ कौलिकं दिव्यमक्षसूत्रोत्तमोत्तमम्॥४४॥

न ज्ञातं केन चिद्भद्रे सत्यं भैरवभाषितम्।
अक्षाश्चैवेन्द्रिया ज्ञेया शक्तिसूत्रोदिता सदा॥४५॥

परमं वित्ति मध्योत्थं मन्त्रनाथे परे पदे।
महाभैरवतत्त्वाग्रे पुण्यपाप विनि[3]ह्नवे॥४६॥

क्षयं [4]नयन्ति विमले स्वसंवित्तिमहानले।
तदा तस्यैष वै संज्ञा अक्षमालेति विश्रुता॥४७॥

एवं ज्ञात्वा परे दिव्ये जपं यद्यत्प्रकाशितम्।
कुरुते सफलं तस्य मन्त्रं नित्योदितं भवेत्॥४८॥

---

१. परे ब्रह्मे, मा. पा.।
२. श्लोक ४१ उत्तरार्धादारभ्य श्लोक ४२ 'शिवात्मकं' इति यावत् ख. मातृकायामेव पठितम्।
३. विनिह्नुवे क.।
४. क्षये नीयन्ति, ख.।

एकावर्ते सकृद्भद्रे मन्त्रनाथं तु यत्स्मरेत्।
भूरिकोटि गुणं जप्यं फलं प्राप्नोति लीलया।।४९।।

जपन्दिने दिने नित्यं निमेषोन्मेष मात्रकैः।
शतकोटि परावर्ता दिव्यां सम्पादितां भवेत्।।५०।।

इति सत्यं परं भद्रे भाषितं दिव्यरूपिणा।
नान्यथा जपते यस्तु अविज्ञाय परं पदम्।।५१।।

जपं चैवाक्षमालां च युग्ममेतद्रहस्यकम्।
वृथा परिश्रमं तस्य मन्त्रराड्पुतां व्रजेत्।।५२।।

अपि भूरि शतं जप्त्वा मन्त्रं तस्य न सिद्ध्यति।
न तस्य भवते मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि।।५३।।

व्याधिमुद्वेगसन्तापैर्विघ्नैस्स परिभूयते।
ज्ञात्वा वा जपते यस्तु मन्त्रं चैवाक्षमालिकाम्।।५४।।

सोऽचिरात्सिद्ध्यते त्याशु ममद्रोहेऽपि लीलया।
आत्मानं भैरवं रूपं ज्ञात्वा शक्तिमयं शिवम्।।५५।।

स्व बाह्याभ्यन्तरारूढं अजं नित्योदितं विभुम्।
सालम्बं च निरालम्बं भावगम्यं भवोद्भवम्।।५६।।

विज्ञानं त्रिविधं दीप्तमुभयोश्शाक्ताशाम्भवम्।
लोलीभूतं स्वधाम्निस्थं स्वस्थानोत्थं परे पदे।।५७।।

त्रिसङ्घट्टपदे व्योम्नि लीनं भैरवमण्डले।
सोऽचिरात्सिद्ध्यते देवि सत्यं भैरवभाषितम्।।५८।।

।। इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे त्रयोदशः पटलः।।

।। चतुर्दशः पटलः ।।

श्री भैरव उवाच

एवं शक्त्योदितं दिव्यं जपं श्रीशाक्तशाम्भवम्।
उदयास्त विनिर्मुक्तं परं नित्योदितं[1] प्रिये।।१।।

जन्म पङ्कार्णवोद्भूतं स्वस्थानोत्थं स्वयम्भुवम्।
ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीत अधमान्मध्यमोत्तमान्।।२।।

षट्प्रयोगवर्णनम्

प्रवक्ष्यामि समासेन रहस्यं ज्ञानसङ्ग्रहम्।
रक्तसूत्रगतां देवीं पद्मरागारुणप्रभाम्।।३।।

बन्धूककुसुमप्रख्यां महारक्तासव प्रभाम्।
भित्वा षडध्वनिलयं कलाचक्रं तु षोडशम्।।४।।

परं ब्रह्ममयं देहं परं ब्रह्म बिलोत्थितम्[2]।
प्रविलीना परे स्थाने षोडशान्ते सदोदिते[3]।।५।।

यत्र भाव मते देवी परा सप्तादशी कला।
[4]नभस्थलीं व्यापयन्तीं जीमूतारक्तवत् प्रिये।।६।।

रक्तवृष्टिं प्रवर्षन्तीं तेनाप्लाव्यं जगत् स्मरेत्।
क्लीङ्कार सम्पुटं मन्त्रं संस्मरेद्ध्यानमाचरेत्।।७।।

तन्त्रमध्यगतं साध्यमात्मनोऽग्रे व्यवस्थितम्।
स्त्रिया वा नृपतिं भद्रे रक्तं तदपरिप्लुतम्।।८।।

---

१. परानिद्योतितं, क.।
२. विलोकितम्, क.।
३. सदोदितम्, क.।
४. नमस्थले, ख.।

[1]त्रिसन्ध्यं चार्धरात्रं वै यावत्पूर्णदिनत्रयम्।
जपान्ते त्रिमधुयुक्तां दिव्यपुष्पामरप्रियाम्॥९॥

सप्ताविंशाहुतिं हूयाद्यस्य नाम्ना दिने दिने।
स वश्यो[2] वशमायाति स्त्रिया अपि पिनाकधृक्॥१०॥

क्षुभ्यन्ति योषितस्सर्वाः देवासुरकुलोद्भवाः।
वशगास्साधकेन्द्रस्य तिष्ठन्ति दासवत् सदा॥११॥

शरीरार्थं प्रयच्छन्ति तृणवत् साधकाय वै।
तदेव रक्तसूत्रं वै चकाराद्यन्तरोदितम्॥१२॥

स्मरेन्मन्त्रवरं दिव्यं रक्तौघममृतावहम्।
रक्तासवार्णवान्तस्थं नगरं पत्तनं पुरम्॥१३॥

ग्रामं वा साध्यदेहं यो रक्ते रक्तासवप्लुतम्।
स्मरणात्क्षोभयेत्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥१४॥

उपद्रवन्ति वै नाभौ वेलामिहमहोदधेः।
सोत्कण्ठाः साधकेन्द्रस्य स्मरसायकपीडिताः॥१५॥

(इति वशीकरणम्)

तदेव रक्तसूत्रोत्थां रक्तज्वालादिसन्निभाम्।
तेनैवाच्छादितं मार्गं भुवनाप्ति - - - - ॥१६॥

- - - सम्पुटितं दिव्यं मन्त्रराणमनसा जपेत्।
घोरान्ते कर्षणं कृत्वा स्थितिः कामकलार्णवे॥१७॥

एवमाकर्षयेत्साध्यान्यत्र तत्र स्थितान् प्रिये।
अनेनैव शरीरेण सदेवासुरमानुषान्॥१८॥

१. त्रिसन्ध्या चार्धरात्रे वै।
२. सर्वश्यो, क.।

सप्ताहान्नात्र सन्देहः किम्पुनः प्राकृतान्भुवि।
(इत्याकर्षणम्)

नीलसूत्रं द्विधारूपं नीलकौलिकसन्निभम्।
हुंकाराद्यन्त संरूढं मन्त्राणमनसा स्मरेत्॥१९॥

तेनैव वेष्टयेत्सूत्रं साध्ये प्रीतियुते सदा।
अनेन ध्यान योगेन सप्ताहाल्लीलया नद्ये॥२०॥

विद्वेषो जायते घोरं अन्योन्यं तु विद्वेषिणम्[1]।
पिता पुत्रोऽपि जनये द्वेषं प्रीतिविदारकः॥२१॥
(इति विद्वेषणम्)

तदेव धूमवर्णोत्था शक्तिर्या पारमेश्वरी।
तदन्तर्वर्तिनं साध्यं नयेन्तं वायवीं दिशम्॥२२॥

याङ्काराद्यन्त संरुद्धां संस्मरेन्मन्त्रनाथकम्।
क्षणादुच्चाटयेत्स्थानात्साक्षादपि शतुक्रतुम्॥२३॥
(इत्युच्चाटनम्)

ह्रीं[2] लूं फट् र्ख्वः तृतीयाद्यन्तं मन्त्रराजेश्वरेश्वरे।
जपेत्कृष्णाञ्जनाकारां स्वस्थानस्थां[3] पराकं लाम्॥२४॥

लीना परा परव्योमे घोरे भैरवमण्डले।
व्याप्य प्रकर्षये बृद्धिं हंसिपत्रलतान्विता॥२५॥

भिन्नाञ्जनचयप्रख्या निर्धूमाङ्गारमिश्रित।
तत्र मध्यगतं साध्यं निर्बीजं तु अधोमुखम्॥२६॥

---

१. वदैज्विनम्, ख.। वद्वैषिनम् क.। उपरितु कल्पितः पाठः।

२. लूं इति बीजं क मातृकायां नास्ति।

३. स्वस्थानोत्थां, ख.।

दग्धं छिन्नाङ्गं मर्म वै विवशं छिन्नमुण्डकम्।
स्मृता[1]मारयते सत्यं सप्ताहात्सधनं रिपुम्।।२७।।

लीलया नात्र सन्देहो अपि गुप्तं सुरासुरैः।।२८।।

सङ्ग्रामविजयविधिः

अथ सङ्ग्रामकाले वा ध्यानमेतत्समभ्यसेत्।
संहारक्रमयोगेन गृहीत्वा साध्यविग्रहम्।।२९।।

नीत्वा वै सृष्टिमार्गेण वह्निगर्भे विनिःक्षिपेत्।
तत्क्षणान्मारयेत्सर्वान्सङ्ग्रामे सर्वशत्रुकान्[2]।।३०।।

निर्दहेत्प सैन्यानि लीलयात्य विशङ्कितम्।।३१।।

(इति मारणम्)

तदेवापीतसूत्रभां हरितालनिशिप्रभाम्।
ध्यात्वा स्वरघनाकारां पीतवर्षाविमुञ्चते।।३२।।

तदन्तर्वर्तिनं साध्यं पीतं तदमृतप्लुतम्।
लकाराद्यंभसं रुद्रं मन्त्रनाथं जपेद्बुधः।।३३।।

स्तम्भयेत्सर्व सैन्यानि सदेवासुरमानुषैः[3]।
शस्त्रास्त्रं स्तम्भयेत्सर्वां घोरकालानलप्रभाम्।।३४।।

जलमग्निं वटे चैव विशङ्केशस्तु पञ्चमः।
स्तम्भयेत्पञ्चदिव्यानि अष्टादशविदां परम्।।३५।।

चतुष्षष्ठि पदान्तस्थां कालकूटादि दुर्जयाम्।
यश्चान्यदपिकर्माणि वाचा गर्भाणि तु क्रमात्।।३६।।

---

१. स्मृत्वा, ख.।
२. सर्व सत्त्वकान्, ख.।
३. मानुषान्, ख.।

[1]ब्रीं काराद्यन्त संरुद्धं ज्वलत्कालानलप्रभम्।
मनुनापं परातन्त्रं स्मृत्वा खे वह्निरूपिणी।।३७।।

पूर्वावर्ते भ्रममध्यस्थं साध्यदेहं तदाकृतिम्।
स्तम्भयेत्तत्क्षणात्सर्वं विषं स्थावरजङ्गमम्।।३८।।

अनेनाभ्यासयोगेन भ्रमन्ताधारमण्डले।
सकृत्स्मृत्वा पराशक्तिं परदेहान्तरोदिताम्।।३९।।

स्तोभं स्तम्भं ज्वरं दाहं हृच्छूलं च विसूचिकाम्।
एकाह्नं द्व्याह्निकं शीतं त्रिभिश्चातुर्थिकादयः।।४०।।

आज्ञया तु परे देहे सङ्क्रामं सम्प्रवर्तते।
इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।।४१।।

स्वर्णलाभ विधिः

ह्रीं हं फट् पुटिते मन्त्रे द्रवेत्कनकवर्चसम्।।४२।।

निर्विषीकरणम्

ध्यात्वा तं तु परस्थानात्साध्यदेहे परामृतम्।
वर्षन्ती तत्क्षणाद्भद्रे निर्विषत्वं प्रयच्छति।।४३।।

कामचञ्चुपुटं दिव्यं कृत्वा खे कं रणोत्तमम्।
कालकूट विषस्यापि भारं शतसहस्रकम्।।४४।।

[2]लीलयामृतवद्धीरो भक्षयित्वाजरो भवेत्।

अकाशोत्पतनसाधना

तदेव शुद्धकुन्देन्दु तुषारधवलप्रभम्।।४५।।
स्मृत्वाब्रह्मबिलान्तोत्थं व्योममण्डलसन्निभम्।
- - यात्यमृतं दिव्यं चलत्कल्लोलपाण्डुरम्।।४६।।

---

१. ब्रीं, क.।
२. मृतब्दर्भिक्षयित्वाजरे भवेत्, क.।

तत्र मध्यगतं साध्यं तदाकारामृतप्लुतम्।
ह्लीं सः ह्रूं सः चतुर्णां ते पुटितं मन्त्रराड् जपेत्॥४७॥

लीलया जायते मृत्युः कारणे खेचरीश्वरे।
वलीपलितनिर्मुक्तः कामेश्वर इवापरः॥४८॥

मेधावी तेजवान्वीरो वज्रकायत्वकं भवेत्।
अनेनैव शरीरेण कल्पायुः खेचरो भवेत्॥४९॥

सर्वविद्यावाप्तिविधानम्

तदेव सितकल्लोलां ध्यात्वा सप्तादशीकलाम्।
स्वस्थानोत्थां पराकाशां वर्षन्तीममृतोपमाम्॥५०॥

ह्स्लूं काराद्यन्त संरुद्धं मन्त्रनाथं जपेत्सदा।
तेनैवाप्लावितं देहं शिवाद्यावीचिगोचरम्॥५१॥

संस्मरेत्सप्तरात्रेण कविर्भवति तद्गतः।
सर्वशास्त्रार्थवेत्तारो गद्यपद्यार्थतत्त्ववित्॥५२॥

वागीश्वरो भवेत्साक्षात्सर्व वाङ्मय कृद्भवेत्।
वाणी चास्खलिता नित्यं भवते तनु मध्यमम्॥५३॥

तस्य पाद राजे धूलिं नन्दयन्ति मनीषिणः।

देहान्तर सङ्क्रमणाविधिः

[1]त्र्यूं काराद्यन्त संरुद्धं चिदाकारपदोदितम्॥५४॥

मन्त्रनाथं जपेद्यस्मात् पिबमानं परामृतम्।
जीवसम्पुटमध्यस्थं लक्षं कृत्वा सदोदितम्॥५५॥

तत्त्वसङ्क्रम योगेन स्वेच्छया वीरवन्दिते।
लीलयां जीवसङ्क्रामं पुनश्चाकर्षयेच्छया॥५६॥

---

१. त्यूं, र्त्र्यूं, ख.। त्र्यूं, क.।

निग्रहानुग्रहञ्चैव ब्रह्माद्यादपि देवताम्।
कुरुते तत्र गर्भान्ते प्रविष्टस्तु न चान्यथा॥५७॥

त्रिकालज्ञत्वसाधना

बूँ कार सम्पुटं मन्त्रं कृत्वा जीवान्तरे जपेत्।
दर्पणाग्रे कुमारीं वा कन्यकां सप्तवत्सराम्॥५८॥

ताप - - चितां भद्रे दीपाग्रे वा वरानने।
- - शतं जप्त्वा आकर्षं कन्यकार्चयेत्॥५९॥

कुलाचारेण विधिवत्पुष्प(धूपा) सवादिकैः।
ततस्सावेष्टयेत्कन्या मन्त्रनाथप्रभावतः॥६०॥

रक्ताम्बरासवोन्मत्ता पृष्ट्वा[1] सा शुभाशुभम्।
दृष्ट्वा दर्शगतं देवं स्वरूपं देवतामयम्॥६१॥

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सत्यं [2]तत्कथ्यते ध्रुवम्।
ॐ जूं सः त्रितयेनैव कुर्यात्तस्य विसर्जनम्॥६२॥

एषा ते सस्फुरा प्रोक्ता प्रसेना पारमेश्वरी।

सर्वरूपधारित्वसाधना

क्रूं काराद्यन्त संरुद्धं मन्त्रनाथं यदास्मरेत्॥६३॥

विशुद्ध पदवीलीनं तं तु स्मृत्वावधारयेत्।
क्षणाद्विद्धस्तु पतते वज्राहत इव द्रुमः॥६४॥

धर्माधर्मक्षये जाते निर्जीवश्चैलवद्भवेत्।
हंस जीव पुटो मन्त्रे बद्धवा धारामृतावहा॥६५॥

नखान्तं वामहस्तं वा स्पृष्ट्वा संज्ञां लभेत्पुनः।
अनाहतपदे लीनं वामसङ्घट्टसम्पुटम्॥६६॥

---

१. पृच्छित्वा, मा. पा.।
२. तत्कथये, मा. पा.।

संस्मरेन्मन्त्र मण्डलं स्वधाम्निस्थमनाहतम्।
तत्क्षणात्कुरुते दिव्यं स्वेच्छार्थं मनसेप्सितम्।।६७।।

पिण्डं चैव पदं रूपं रूपातीतं चतुर्थकम्।
प्रवेशं तु परे देहे निर्गममपहारकम्।।६८।।

द्रव्याणां कुरुते सर्वां चतुर्भागं गणाम्बिके।
यं यं समीहते रूपं स्थूलं सूक्ष्मं शुभाशुभम्।।६९।।

जलेन जलरूपं स्यात् स्थलेन स्थलरूपधृक्।
वायुर्वायुगुणे प्रोक्तमनले तेजरूपधृक्।।७०।।

पार्थिवे पार्थिवं रूपं खस्वरूपं खमध्यतः।
एवं बहुविधै रूपैस्स्वेच्छया (रूपधृग्भवेत्)।।७१।।

स्वेच्छारूपधारित्व साधना

? कार सम्पुटं मन्त्रं मणिपूरगतं स्मरेत्।
उत्थितं सूर्यचक्रात्तु निर्गतं कूर्ममण्डले।।७२।।

प्रविष्टं बोधयेत्सर्वं षट्कलाचक्रबृंहितम्।
भित्वाब्रह्मबिलाधारं घोरान्ते कर्षयेद्बलात्।।७३।।

प्रक्षिपेन्मणिपूरान्ते क्रमेणानेन सुव्रते।
प्रविष्टो जीवनिलये चालयेत्प्रतिमानघे।।७४।।

प्रहसन्स्फोटनञ्चैव वल्गनं शैलजादिभिः।
स्वेच्छया प्रतिभास्सर्वाः कुरुते नात्र संशयः।।७५।।

प्राणाकर्षण साधना

क्ष्रीं फें सम्पुटितं मन्त्रं जीवसम्पुटमव्ययम्।
प्रवेशं गुरुवक्त्रान्ते स्थितिश्श्रीकन्दमूलकैः।।७६।।

तत्रस्थं छेदनं कुर्यादविसर्गं पुनः पुनः।
एवमाकर्षयेत्प्राणान्सदेवासुरमानुषान्।।७७।।

खेचरीमुद्रासाधना

स विसर्गप्रयोगेण कृपयावेशयेत्पुनः।
आक्रम्य खेचरी[1] यन्त्रे रोधयेच्छशिनो गतिः॥७८॥

ऊर्ध्वचन्द्रप्रवाहेण स्फुरन्नार्डीं प्रवेशयेत्।
पश्चाद्वै संस्मरेन्मन्त्रं क्ष्रूंकारस्य तु सम्पुटम्॥७९॥

हृत्कम्पनप्रयोगेण तत्पतेद्गगनान्तरे।
एषा च खेचरी मुद्रा अणिमादि फलप्रदा॥८०॥

शालिपुष्टिप्रयोगः

वषट्कार पुटं मन्त्रं शान्तिके संस्मरेत्सदा।
वौषट्कार पुटं दीप्तं पौष्टिके पुष्टिवर्धनम्॥८१॥

सर्वकामप्रदं प्रोक्तं दुरितौघ विनाशनम्।

रहस्यसाधना

र्ज्लूं फूं[2] सम्पुटितं मन्त्रं शृङ्गारपुटमध्यगम्॥८२॥

पातालोर्ध्वगतं यन्त्रं रविसोमाग्निसम्भवम्।
तत्र चित्तं लयीभूतं मनोमन्त्रात्मदैवतम्॥८३॥

पञ्चभूताहुतिं दत्त्वा सर्वद्वाराणि रोधयेत्।
प्रवेशं सूर्यचक्रस्य निर्गतं अमृतावहे॥८४॥

वेधघट्टनिरोधं वै रूपस्य परिवर्तनम्।

सर्वदर्शित्वसाधना

- - - जानु सङ्क्रामं निग्रहानुग्रहांस्तथा॥८५॥
जीव जे - - - पुटे लीनं कुरुते नात्र संशयः।
सानन्तादि शिवान्ताख्यं यावदव्यक्तगोचरम्[3]॥८६॥

---

१. खेचरो यन्त्रं, क.।

२. द्रर्लूं ह्रूं। पार्श्वे-र्ज्लूं, ख.।

३. ०लक्षणम्, ख।

गत्यागमं तु सर्वेषां पश्यते[1] ससुरासुरम्।
रुद्रादिसर्वसत्त्वानां स्थूलसूक्ष्मचराचरम्।।८७।।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च ज्ञायते वर्तमानकम्।
तत्रस्थं कुरुते कर्म अधमं मध्यमोत्तमम्।।८८।।

रोगनाशसाधना

फेंका हूं फट्[2] चतुर्बीजैः मन्त्रनाथं ससम्पुटम्।
स्वधामोत्थं परं तेजस्स्मृत्वा श्रीपारमेश्वरम्।।८९।।

जीवसम्पुटमध्यस्थं तत्त्वगर्भो[3]दरे क्षिपेत्।
कुरुते विविधं कर्मअधमं मध्यमोत्तमम्।।९०।।

ज्वरं चतुर्थिकादीनि वेदघट्टनिरोधकम्।
निग्रहानुग्रहञ्चैव भूतापस्मारमर्दनम्।।९१।।

विषग्रहादयस्सर्वे लूतागर्दभनाशनम्।
कुष्ठं[4] भगन्दरं रोगं व्याधिभिश्चैवमादयः।।९२।।

वश्याकर्षणविद्वेषो मारणोच्चाटनंस्तथा।
स्तोभं स्तम्भनमावेशं प्रवेशं निर्गमंस्तथा।।९३।।

जीवाकर्षं तु सङ्क्रामं भूतं भव्यं भविष्यकम्।
उत्क्रान्तिः खेचरत्वं च विलयं त्रिप्रभञ्जनम्।।९४।।

रसं रसायनं खड्ग[4] अङ्गुलिकाञ्जनगोचरम्।
प्रसेनासुष्ठु कथनं प्रतिमादिषु चालनम्।।८५।।

---

१. पच्यते, क.।
२. फेंकार हूं फट्, क.।
३. ०गर्भोधरे० मा. पा.।
४. खड्गाङ्गुलिकाञ्जनरोचनम्, ख.।

एवमाद्यादि कर्माणि उक्तानुक्तानि यानि च।
अन्यशास्त्रान्तरस्थानि दिव्यादिव्यानि यानि च।।९६।।

तानि साधयते नूनं आज्ञया वीरवन्दिते।
स्मरणान्मन्त्र नाथं वै भोक्तुं चैवाथ शाम्भवम्।।९७।।

तिष्ठन्ति दासवत् तत्र अधमं मध्यमोत्तमम्।
लीलया ना(त्र स)न्देहस्सत्यं भैरवभाषितम्।।९८।।

यावन्नाप्यायितं मन्त्रं शाक्तं चैवाथ शाम्भवम्।
तत्त्वगर्भान्तरारूढं स्वस्वभावं सदोदितम्।।९९।।

(वृद्धस्वच्छन्दनाथस्य) शास्त्रोक्तं साधकेश्वरम्।
जप्त्वा चाप्यायते मन्त्रं मन्दपुण्योऽपि लीलया।।१००।।

साधयेत्तानि कर्माणि कर्मणा मनसा गिरा।
भुञ्जते विविधान् भोगान्दिव्यादिव्यात्मनेप्सितान्।।१०१।।

स्वपिण्डे सिद्ध्यते चान्ते इत्याज्ञापारमेश्वरी।।१०२।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे चतुर्दशः पटलः।।

।। पञ्चदशः पटलः ।।

श्री देव्युवाच

ॐ भगवन्योगिनीनाथ सर्वज्ञस्सर्वकृद्विभो।
सूचितन्ते पुराधूपं नवाङ्गं पाञ्चभौतिकम्।।१।।

वल्लभं भैरवेशस्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
कथय स्वप्रसादेन देव चन्द्रार्धशेखर।।२।।

कौलिकधूपविवरणम्

श्री भैरव उवाच

रहस्यं कौलिकं धूपं सर्वसान्निध्यकारकम्।
सर्वस्वं सम्प्रवक्ष्यामि स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।३।।

शिवाम्बुं कूर्मभस्म वै लालाज्यं कादिसम्भवम्।
अष्टाङ्गं क्षतजं स्वीयं सुरामाकुङ्कुमंस्तथा।।४।।

उभयानन्दजोपेतं रविसोमामृतं रसम्।
श्रवणाख्यं मलं दिव्यं एकीकृत्य गणाम्बिके।।५।।

ग्राहयेत्तु पलस्यार्धं तदर्धार्धं नृमांसकम्।
तत्समं मत्स्यमांसं वै गोफल्गुं तत्समं प्रिये।।६।।

तत्समं तु अजं मेषमेवं तु पाञ्चभौतिकम्।
नवाङ्गरससंयुक्तं श्रीकण्ठं गुग्गुलुं शुभम्।।७।।

त्रिगुणं दापयेत्तत्र कर्पूरागुरुमिश्रितम्।
मृगजं मलयोपेत कश्मीरकेसराङ्कितम्।।८।।

नखं सर्जरसं जातिसरसं सितशर्करा।
ईषद्द्रवाज्यसहितमेकीकृत्य विनिःक्षिपेत्।।९।।

अष्टोत्तरशतावर्तं मूलमन्त्रेति मन्त्रितम्।
सुगुप्तं स्थापयेच्चोर्ध्वे श्वेतवस्त्रे सिते शुभे।।१०।।

एषोऽसौ कौलिकं धूपं बृद्धनाथस्य वल्लभम्।

धूपमाहात्म्यम्

परान्तः पातिनी देवी सर्वस्वं हृदयं परम्।।११।।

मध्याह्वान करं दिव्यं योगिनीनां प्रियोत्तमम्।
मर्दनं सर्वदुःखानां भूतापस्मारनाशनम्।।१२।।

ज्वर ग्रहविषं दुःखं त्रिभिश्चातुर्थिकादयः।
गन्धेन प्रलयं यान्ति कूष्माण्डब्रह्मराक्षराः।।१३।।

चौरव्यालनृसिंहाद्याश्शार्दूलकरि[1]यूथिकाः।
स्थलजा जलजाघोरा कुलकादिमहोरगाः।।१४।।

वज्रपाताशनिर्वह्नी रतिकामादयोऽनद्ये।
एवामाद्यानि सर्वाणि स्कन्दबालग्रहादिभिः।।१५।।

गन्धेन प्रलयं यान्ति शतशोऽथ सहस्रशः।
इति सत्यं महाकालि भैरवस्य वचो यथा।।१६।।

प्रयोगभेदेनधूपप्रभावकथनम्

किञ्चिच्छृङ्गमृगोपेतं कर्तव्यं धूपमुत्तमम्।
राजद्वारेऽथ सङ्ग्रामे विषमे[2] वाथसङ्कटे।।१७।।

विवादे तु महाभीमे दिव्य स्तोम्भोऽथ पञ्चके।
कृत्वा लक्ष्मीवनं रात्रौ श्मशाने घोररूपिणे।।१८।।

योगिनीराव सङ्कट्टे महावेतालसेविते।
चर्याकालेऽथ पीठान्ते पूजाकाले विशेषतः।।१९।।

---

१. कर चूषिका क.। कर यूथिका, ख.।

२. विसर्गे, ख.।

अटव्यां चैव कान्तारे जला(ग्न्युर) गजे भये।
(खड्ग) युद्धेऽथवा द्वन्द्वे बिलयन्त्रा[1]दिसाथने॥२०॥

वाचां युद्धेऽथवा काले अथ मृत्युञ्जयेऽथवा।
एवमाद्यादि विविधैस्सर्वथर्मैश्च दारुणैः॥२१॥

जयं प्राप्नोत्ययत्नेन प्रतिकालेऽथ निर्गमे।
वीर योगिनिसङ्ग्रामे - - - - - - - - ॥२२॥

महासमय सङ्कट्टे धूपिते - - - - - - - -।
- - - - - - - - - - - - - - - लभेत्॥२३॥

योऽस्य गन्धं समाघ्राति साक्षादपि शतक्रतुः।
दिव्यस्त्रीअन्त्यजावाथ सा वश्या दासवद्भवेत्॥२४॥

दृष्ट्वा वै योषितस्तस्य साधकस्य वशानुगाः।
देवासुरकुलोद्भूता यक्षगन्धर्वमानुषाः॥२५॥

कामार्णवह्रदे मग्नास्स्मरसायक पीडिताः।
जरज्जघनकल्लोलललितास्सुभगस्थलाः॥२६॥

आगच्छन्ति महाकन्याः वेलाविव महोदधेः।
गच्छन्तमेव गच्छन्ति साधकेन्द्रस्य दासवत्॥२७॥

धूमस्यास्य प्रभावस्य सत्यं भैरवभाषितम्।
दिव्येमेतन्महाधूपं शिवशक्तिप्रियोदितम्॥२८॥

सर्वकामप्रदं सत्यं सर्वापदनिवर्हणम्।
सर्वसौभाग्यजननमलक्ष्मितमनाशनम्॥२९॥

दारिद्र्यदुःखशमनं अणिमाद्यष्टसिद्धिदम्।
त्रैलोक्यैश्वर्यफलदं सर्वज्ञानार्थसिद्धिदम्॥३०॥

---

१. यात्रादि, क.।

सर्वाधिकारसुखदं कुलकौलेषु गोपितम्।
अस्मिन्कौलागमे ख्यातं त्वत्प्रीत्यासरहस्यकम्॥३१॥

अनेन रहितं - - - - - सदेवासुरमानुषम्।
कुतस्सिद्धिः कुतो मुक्तिः कुतः काम वि(भूति)षु।
कुतस्तासां तु सौभाग्यं कुलकौलमुपासकाम्॥३२॥

पशवस्ते विचारेण भोगमोक्षविवर्जिताः।
योगिनीगर्भसम्भूतो रुद्रांशो मलवजितः[१]॥३३॥

प्राप्यते तं महाधूपं नवाङ्गं पाञ्चभौतिकम्।
यस्य नापश्चिमं जन्म स्वयं वा यो न भैरवः॥३४॥

नासौ प्राप्नोति वैदूरं वृद्धस्वच्छन्दवल्लभाम्।
सर्वदुःख प्रशमनं सत्यं भैरवभाषितम्॥३५॥

॥ इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे पञ्चदशः पटलः॥

१. पंक्ति, ख. मातृकायामेवास्ति।

॥ षोडशः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

मन्त्रस्याप्यायनं ब्रूहि येनासौ सिद्धिदं परम्।
सर्वकामप्रदं दिव्यं मन्त्रराट् सर्वबृंहितम् ॥१॥

वीराणां सम्मुखं तृप्तं ददाति मनसेप्सितम्।
स्मरणात्तत्पदं नाथ कथयस्व पिनाकधृक् ॥२॥

मन्त्राप्यायनम्

श्री भैरव उवाच

शृणु तत्परमं ज्ञानमज्ञान पटलापहम्।
सारं ते सम्प्रवक्ष्यामि स्वपिण्डे भोगमोक्षदम् ॥३॥

ज्ञात्वा गुरुमुखात्पूर्वं मन्त्रराजेश्वरेश्वरम्।
पूजयित्वा विधानेन पुष्पधूपोपहारकैः ॥४॥

भैरवं च गुरुं शास्त्रं त्रिविधेनान्तरात्मना।
जानुभ्यामवनिं गत्वा विज्ञाप्यगुरुपादुकाम् ॥५॥

भैरवं श्रीगुरुन्नाथ मग्नोऽहं भवसागरे।
उत्तारयस्व मां देहि उभयं शाक्तशाम्भवम् ॥६॥

मन्त्रयुग्म प्रसादेनानुगृहीतोऽस्मि ते प्रभो।
गुरुणां दीयते मन्त्रं रोचने कुङ्कुमान्वितम् ॥७॥

सुरालिसहिते भूर्जे लिखित्वा सुकुलामृते।
परिवारयुतं दिव्यं मन्त्रयुग्मं तु मूलजम् ॥८॥

---

१. चौरना, क।

अधिकारिनिर्देशः

सुभक्तस्यैकशिष्यस्य दद्यान्नान्यस्य कस्यचित्।
दीक्षितस्याभिषिक्तस्य आत्मतुल्यस्य नान्यथा॥९॥

मूढात्मा यः प्रयच्छन्ते उभौ तौ गुरुशिष्यकौ।
व्रजन्ति नरके घोरे सादाख्यं कल्पमुत्तमम्॥१०॥

नाहं तासां परित्राता यदि हुत्वा चराचरम्।
एवं सात्वा प्रयत्नेन पात्रैभ्यो प्रतिपादयेत्॥११॥

चिरं परीक्षिते शिष्ये हेमवन्निकषोत्थिते।
- - - - - - - - - - - - - - सवम्[1]॥१२॥

मन्त्रप्रयोगकथनम्

गृहीत्वैवं[2] वरारोहे प्राणस्य शिरसाञ्जलिः।
कृत्वा प्राणगतं सर्वं मन्त्रग्रामं तु मूलजम्॥१३॥

प्रक्षाल्य वज्रतोयेन सुरालिसहितेन वा।
सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा नस्ये पाने पिवेच्च धीः॥१४॥

सर्वाङ्गैश्च समालभ्य वलीपलितवर्जितः।
तत्क्षणाद्दिव्य देहेऽसो मृत्युजिद्वज्रकायवान्॥१५॥

रूपेणानङ्गसदृशः सर्वत्र प्रियदर्शनः।
भवते साधकश्श्रीमान् द्वितीय इव भैरवः॥१६॥

मन्त्रतेज प्रभावेण तत्त्वगर्भे विराजते।
एवं विधे स्थितं मन्त्रमर्चयित्वा यथाविधि॥१७॥

ज्ञात्वा गुरुमुखं पश्यन्मयन्त्रस्यार्ध्यं[3] प्रदापयेत्।
संख्या सङ्कल्पकङ्कृत्वा अयुतस्य वरानने॥१८॥

---

१. नास्ति पंक्तिः, क।

२. संगृहीत्वेत्रं, क।

३. गुरुमुखात्सभ्यङ्मन्त्रस्यार्धं० ख.।

एकान्ते विजने पश्चाच्छुद्धकायस्समाहितः।
त्रिसन्ध्यं तु जपेन्मन्त्रं निशाकाले विशेषतः॥१९॥

प्रत्यहं तु समं जाप्यं कर्तव्यं वीरवन्दिते।
अनेन क्रमयोगेन पूर्वमेवायुतं समम्॥२०॥

जप्त्वा साप्याययेन्मन्त्रं शृणु तत्त्वेन पार्वति।
कुण्डं कृत्वा तु पद्माङ्कमथवा कामतः प्रिये॥२१॥

काम्यप्रयोगाः

शान्तिके चातुरस्त्रं वै वश्यार्थे चार्धचन्द्रकम्।
पौष्टिके वर्तुलं कार्यं अभिचारे त्रिकोणकम्॥२२॥

सर्वकामप्रदं कुण्डं पद्माकारं प्रकीर्तितम्।
ह्रींकारे पूजयेत्कुण्डं ऐं ईं रँस्त्रितयेन वै॥२३॥

पूजयेत्परमां देवीं शक्तिं श्रीवह्निवासिनीम्।
ह्रीं ऐं रूँस्तृतीयेनानेन तेजेशं पूजयेत्परम्॥२४॥

होमद्रव्यविधानम्

प्रज्वाल्य सुरदावाग्निर्ब्रह्मकाष्ठे अथापि वा।
होमं प्रकल्पयेत्पश्चाच्छृणु तत्त्वेन पार्वति॥२५॥

नृमांसं गोद्भवं चैव छागमांसं तु मेषकम्।
कृत्वा वै पिशितं दिव्यं गुलिकां कारयेद्बुधः॥२६॥

बदिराण्ड प्रमाणेन सहस्त्रं सप्तभिश्चताः।
गृहीत्वा तु पृथक्पात्रे पृथक्पात्रे पुनः प्रिये॥२७॥

मधुक्षीराज्य युक्तं सितशर्करयान्वितम्।
मालतीकुसुमं दिव्यं सहस्त्रं सप्तभिश्च ताः॥२८॥

सप्तजातीफलोपेतं सप्तपूगफलान्वितम्।
तत्समा श्रीफलाक्षोटं यवभिस्तिलतण्डुलम्॥२९॥

पलत्रयं क्षिपेन्मध्ये पलं भृङ्गिरजस्य च।
स्वकुलोत्थस्य वीरेशि पलपञ्चामृतस्य च।।३०।।

एवं ते होत्र सम्भारं कृत्वा एकत्र सुव्रते।
पश्चाद्धोमं प्रकर्तव्यं शृणुत्वं वीरवन्दिते।।३१।।

होमविधिः

स्वे स्वे मन्त्रेश्वरे भद्रे आहुतिं प्रतिपादयेत्।
त्रिभिः कुण्डे त्रिभिर्वह्नौ त्रिभिश्श्रीवह्निवासिनीम्।।३२।।

एकैका परिवारस्य गणेशाद्यान्हुनेत्क्रमात्।
या तच्छक्तित्रयं भद्रे चक्रे श्रीद्वादशारके।।३३।।

सप्तविंशाहुतीर्दद्यात्प्रेतनाथस्य भामिनि।
अष्टोत्तरशतं दद्यादाहुतीनां वरानने।।३४।।

जुहुयान्मूलमन्त्रस्य अष्टात्रिंशाक्षरस्य च।
स्वस्वभावस्वरूपस्य बृद्धनाथस्य सुव्रते।।३५।।

या सास्य वल्लभा देवी बृद्धकाली जगाम्बिका।
आदेशेन[1] सुलुप्ता सा पञ्च फट्कार वर्जिता।।३६।।

जीव सम्पुटमध्यस्था धामत्रयपदोत्थिता।
आद्यन्तमध्य रहिता फट्कारप्रणवोत्थिता।।३७।।

अभिधानपदे र्हीना जगद्ग्रासैकघस्मरा।
खस्वरूपा खमार्गस्था विद्यासप्तदशाक्षरी।।३८।।

अष्टोत्तरशता सप्त आहुतीनां प्रदापयेत्।
ततो पूर्णाहुतिं दद्यादुभयोश्शाक्तशाम्भवे।।३९।।

१. आदिसेन, मातृका पाठः।

मन्त्रमुग्मेश्वरे दिव्ये - - - - - - - - - - - - -।
- - ततः पश्चाद्वरारोहे जानूंस्त्यक्त्वा तु भूतले॥४०॥

अष्टोत्तरशतं पूर्णं शतान्येकाक्षराधिका।
महासमयिनी दिव्या आहुतीनां प्रदापयेत्॥४१॥

मन्त्रमातां परानन्तां दिव्यां शान्ताग्ररूपिणीम्।
तृप्तास्ते मन्त्रराट्सर्वे सचेटपरिवारकाः॥४२॥

तन्मुखान्नात्र सन्देहस्सर्वकामविभूतिदा।
भवन्ति साधकेन्द्राणामित्याज्ञा पारमेश्वरी॥४३॥

यागस्थाननिर्देशः

एवमाप्यायिता मन्त्राश्श्मशाने भूगृहेऽपि वा।
अटव्यां निजरे स्थाने नखाग्रे यत्र कुत्रचित्॥४४॥

नदी तीरैलिङ्गे च एकान्ते सर्वकामदम्।
भवते साधकेन्द्राणां स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥४५॥

ददाति विपुलान्सिद्धीन्नधमान्मध्यमोत्तमान्।
एवं वै साधितं मन्त्रं कुरुकर्माण्यथेप्सितम्॥४६॥

एकान्ते च विविक्ते च निःसङ्गो ससहायवान्।
साधयेद्विविधान्भोगान्नधमान्यध्यमोत्तमान्॥४७॥

प्रवक्ष्यामि समासेन शृणुत्वं वीरवन्दिते।

॥ इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे षोडशः पटलः॥

॥ सप्तदशः पटलः॥

काम्य होमविधानम्

श्री भैरव उवाच

पूर्वोक्तां पिशितोद्भूतां कृत्वा वैतालिकां शुभाम्।
बदिराण्ड प्रमाणेन घृताक्तामयुतां समाम्॥१॥

मधुक्षीरसमोपेतमीशच्छर्करयान्वितम्।
कर्पूरागुरुसंयुक्तं गुग्गुलुमयुतं हुनेत्॥२॥

विद्येश्वरपदं दिव्यं स्वपिण्डे प्राप्यते भृशम्।
तद्भोगाधिपतिरसौ हि भवते यत्समाप्रिये॥३॥

रक्तचन्दनहोमेन कुसुम्भेवा सुमध्यमे।
सूर्यमण्डल चारोऽसौ तद्भोगानां पतिर्भवेत्॥४॥

लाजायुत होमेन मन्दपुण्योऽपि लीलया।
चन्द्र भौमाधिपोऽसौ हि सुभग - - - - ॥५॥

अनेनैव शरीरेण भवते नात्र संशयः।
मृगजागुरुहोमेन विद्याधरपदं लभेत्॥६॥

चक्रवर्तित्वकं राज्यं देहेनान्येन चान्यथा।
श्रीभान्पूगफलं हुत्वायुतं त्रिमधुरप्लुतम्॥७॥

सिद्धानां चक्रवर्तित्वं राज्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।
अणिमाद्यष्टमोपेतं स्वपिण्डे लीलयानघे॥८॥

जातीकुसुमहोमेन हुत्वागन्धर्वभोगभुक्।
चम्पकैः पाटलादीनिः हुत्वा श्रियमवाप्नुयात्॥९॥

कदम्बविटपस्याधो कदम्बबकुलान्वितम्।
गुलिकां त्रिमधूपेतां हुत्वा चैवायुतं समम्॥१०॥

यक्षास्तु वशगास्सर्वे सचेटपरिवारकाः।
रूपलावण्यविभवैर्यक्षिणीनां पतिर्भवेत्॥११॥

ब्रह्मवृक्षवटे भद्रे न्यग्रोधे शल्मलेऽथवा।
वटवृक्षे पलाशे वा अश्वत्थे पाटले द्रुमे॥१२॥

समीपे अयुतं हुत्वा करवीरास्वलोहितान्।
राक्षसास्सिद्ध्यते घोरा कन्यकारूपशालिनी॥१३॥

नागप्रेतं समासाद्य कुन्दपुष्पाथनङ्गजा ?।
द्विशीर्षमयुतं हुत्वा नागरान्तः परान्वितम्॥१४॥

वशगं सिद्ध्यतेत्याशु नागकन्या पतिर्भवेत्।
कामवद्विचरेत्सत्यं पाताले उरगालये॥१५॥

कामपुष्पयुतं हुत्वा किन्नरीणां पतिर्भवेत्।
गङ्गातीरं समादृत्य समादृत्य उन्मत्ता कुसुमायुताम्॥१६॥

होमान्ते मुनिकन्यायां ऋषीणां स पतिर्भवेत्।
बिलद्वारं समाश्रित्य विवरे श्रीमुखेऽपि वा॥१७॥

सिद्धाक्षं लवणोपेतं कटुतैल्य विमिश्रितम्।
उरगस्साधकोपेतमष्टोत्तरशतं हुनेत्॥१८॥

अयुतं तु वरारोहे होमान्ते वीरवन्दिते।
निर्गच्छन्ति महाकन्या रूपसौन्दर्यलालिता॥१९॥

कोटच्चयुतप्रख्याता - - समा राजसा सुरा।
सात्त्विका अमृतोद्भूता भूरिकोटच्चोऽयुता युता॥२०॥

गृहीत्वा साधकेन्द्राणामुत्सङ्गे प्रविशन्ति ताः।
मन्दिरं हाटकं शस्यं पातालं भोगसागरम्॥२१॥

तत् सार्धं क्रीडते तत्र सर्वज्ञसर्वबृंहितः।
सर्वामयविनिर्मुक्तो यावदाभूमि सम्प्लवम्॥२२॥

भुक्त्वा ते विविधान्भोगान् शिवस्संयोज्यतां व्रजेत्।
कोटित्रयसमाख्याता विवराणां चराचरे॥२३॥

कोटचैका चान्तरिक्षे तु त्रिभिः कोटचो महीतले।
तासां वै साधना ह्येषा उत्तमा कथिता मया॥२४॥

सरहस्या तु सामान्या सस्फुरन्ता अकीलिता।
कौलिकेन विधानेन सिद्धिः श्रीवर्धिनी परा॥२५॥

सकृज्ज्ञात्वाथ वै कृत्वा तिष्ययोगे गुरोर्दिने।
चतुर्दश्यां सिते पक्षे बुधे चैव पुनर्वसौ॥२६॥

नवम्यां चाष्टमीवाथ पौर्णमास्यामथापि वा।
उभयोस्सितकृष्णाभ्यो ग्रहणो चन्द्र सूर्ययोः॥२७॥

स्वाति योगे खौ वाथ द्वादश्यां वा शनैश्चरे।
चन्द्रे च रोहिणी ऋक्षे तृतीयापक्षयोर्द्वयोः[1]॥२८॥

हाटकेश्वरके[2] तन्त्रे पूर्वोक्तैरुक्त योगकैः।
होमान्ते विवरास्सर्वे निर्यन्त्रासु भवन्ति हि॥२९॥

प्रविशेन्मन्त्रमन्त्राध्वा[3]विवरं श्रीमुखोत्तमम्।
अथवा स्वच्छया भद्रे सिद्धद्रव्यास्ति तत्र वै॥३०॥

---

१. पक्षयोभयोः। मा. पा.।
२. पटकेश्वरके. क.।
३. मन्त्राद्यौ, क. मन्ताद्धचो. ख.।

रसं रासायणं खड्गं शूलिकाञ्जन रोचनम्।
ज्वरं वै एव साध्यानि असङ्ख्यानि हि विद्यते॥३१॥

मणिरत्नादिभिस्सम्यक् फलान्यमृतसम्भवानि।
चक्रवर्तित्वकं राज्यं भवेद्विश्वं[1] नराधिपः॥३२॥

इति सत्यं महाभागे अष्ट ऋद्धीश्वरो हि सः[2]।
मन्त्राख्यं[3] पञ्चमं प्रोक्तं भुवनाख्यमत श्शृणु॥३३॥

- - - - - - - - - - - - - थ स्वरूपं सदोदितम्।
संस्थितं तु परं ब्रह्मस्वरूपं रूपवर्जितम्॥३४॥

अकुलं सर्वगं नाथं विकलं तु कलामयम्।
अखण्डमण्डलाकारं निष्कलमचलं ध्रुवम्॥३५॥

उदयास्तमनिर्मुक्तं सदानन्दमयोदितम्।
प्रमाणं तत्करे ह्येतमप्रमेयमनौपमम्॥३६॥

वाग्जालविषयातीतं निर्गुणं सगुणालयम्।
अनाख्यं सर्वगं धाम भावगम्यं भवोद्भवम्॥३७॥

तस्योर्ध्वे तु अनन्तं वै अरूपं संस्थितं अजम्।
आधारशक्तिस्तयोऽर्ध्वेऽवस्थिता सर्वबृंहिता॥३८॥

तदूर्ध्वं भगवान्कूर्मः कटाहत्वेन संस्थितः।
कोटियोजन बाहुल्यं ज्ञान तेजोपबृंहितम्॥३९॥

तस्यासनस्थितं नाथं रुद्रङ्कालाग्निभैरवम्।
मन्त्रसिहांसनारूढं कालो द्वादशलोचनः॥४०॥

---

१. भवेदपि, ख.।
२. अष्ट ऋद्धी च गेहिनः। ख.।
३. मन्त्राध्वं, ख.।

चतुर्वक्त्रो महाकायो जटामुकुटमण्डितः।
ज्वलन्ति आयुधान्यस्य रुद्रज्वलितशूलिनः॥४१॥

त्रिनेत्रैः पञ्चवक्त्रैश्च भूरिकोटचयुतैश्चतम्।
रूपलावण्यसंयुक्तं सेवितं रुद्रकन्यकैः॥४२॥

एवं विधैस्सभगवान्दशबाह्वेन्दुशेखरः।
दुर्निरीक्ष्योऽति भीमश्च काद्यखट्वाङ्गपाणिनम्॥४३॥

तस्य देवाति देवस्य जटानां सप्तकोटयः।
एकैकस्य तु वर्तस्य प्रमाणमेष सुव्रते॥४४॥

कोटियोजनमेकेन सुदीप्तविद्युसन्निभाम्।
पञ्चाषड्भि[1]स्तु कोटिनां - - - - - - - - - ॥४५॥

- - - - - - प्रमाणं वै कथितं वीरवन्दिते।
सर्वास्तु देवताश्चैव योगिन्यस्सर्वबृंहिताः॥४६॥

व्योम वामेश्वरी नन्दा[2] कचरूपा पराम्बिका[3]।
जटाजूटं समाश्रित्य देव देवस्य संस्थिता॥४७॥

एकैकस्य कचस्यान्ते सहस्रदलभूषिताम्।
बभूव कमलं दिव्यं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥४८॥

भूरिचन्द्रायुतप्रख्यं ताभ्यां मध्ये वरानने।
दशधा पञ्च (तत्त्वैश्च) समन्तात्परिवेष्टिते॥४९॥

भूरिकोटच्योह्यसंख्याता ब्रह्माण्ड नहुकैस्सह।
बभूव काञ्चनास्सर्वे चूतद्रुमफलोपमा॥५०॥

---

१. षड्भ्यचस्तु। क.।
२. नन्ता। इति मा. पा.।
३. जगाम्बिका। मा. पा.।

प्रलम्बन्ता ना मधश्चोर्ध्वे दिग्विदिक्षुगतास्थिता।
तस्य देवाति देवस्य शम्भुवृक्षशिरोद्भवा।।५१।।

यदेवात्मरससम्पूर्णा सर्वरत्नसमन्विता।
सप्तभिर्भुवनैर्युक्ता सप्तपातालशोभिता।।५२।।

त्रैलोक्यमण्डपैर्युक्ता स्वर्गादिनरकान्विता।
चतुर्दशविधैस्सर्गैर्भूतग्रामैश्चतुविधैः।।५३।।

सप्तभिः पर्वतैर्दिव्यैस्समुद्रैश्चतुरोत्तमैः।
सागरै रसप्तभिर्दिव्यैस्समुद्रैश्चतुरोपमै[1]।।५४।।

कन्यकैर्विविधाकारै रूपयौवनगर्वितैः।
लोकपालैर्ग्रहैर्वृक्षैस्सदेवासुरमानुषैः।।५५।।

पुण्यपापादिभि शुद्धैः पञ्चभूतैर्महाबलैः।
स्थूलसूक्ष्म परैर्भावैर्योगिनीवीरनायकैः।।५६।।

सम्पूर्णाण्ड[2]स्ततोः सर्वे शतरुद्रैर्बहिर्वृताः।
तेषां वैनायकाश्चैव वृक्षाः कालाग्नि भैरवाः।।५७।।

मन्त्रपीठासनासीना स्थित्योत्पत्तिलयङ्कराः।
तेन शुद्धेन सुभगे शोधितं भुवनाध्वनम्।।५८।।

भवते साधकेन्द्राणां सत्यं भैरवभाषितम्।
एतत्ते षड्विधं प्रोक्तं अध्वानं कौलिकागमे।।५९।।

गोपितं कुलकौलेषु तन्त्राद्यैर्मतयामलैः।
षड्विधैर्दर्शनवरैश्वचतुर्वेदक्रमान्वयैः ।।६०।।

१. प्रमादिकः स्यात् पादाभ्यासः।
२. सम्पूर्णाण्डस्तु ते सर्वे, ख.।

अस्मिन्कौलागमे दिव्ये सर्वस्वं प्रकटीकृतम्।
यावन्न ज्ञायते दिव्यं षड्विधाध्वानमुत्तमम्।।६१।।

तावन्न जायते सिद्धिर्न मुक्तिः पारमेश्वरी।
अनेन ज्ञातमात्रेण मन्दपुण्योऽपि लीलया।।६२।।

स्वपिण्डे सिद्ध्यते वीरो क्रिया राज्यवती यथा।
ज्ञाता सिद्ध्यत्यनायास्तथै वाध्वविधायकः।।६३।।

इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।
किमन्यत्पृच्छसे देवि नास्ति ज्ञानमतः परम्।।६४।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे सप्तदशः पटलः।।

॥ अष्टादशः पटलः॥

कौलिकीचर्याजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

भगवन्शाकिनीनाथ अद्य मे सफलं तथा।
अद्य प्राप्तं मया ज्ञानं सद्यः मे सफला गतिः॥१॥

क्रिया तु कीदृशी देव कौलिकी कथय प्रभो॥२॥

श्रीभैरव उवाच

रहस्यं दुर्गमं दिव्यं ज्ञातं ते पृच्छिते प्रियं।
यं ज्ञात्वा मन्दपुण्योऽपि जीवचन्द्रार्क तारकाः॥३॥

यावन्न ज्ञायते दिव्यं कवाटं योगिनी कुलम्।
शारीरं कौलिकाम्नायं अवतारतरङ्गिणी॥४॥

विधानं छिन्नमुण्डाया मन्त्रमेकादशाक्षारम्।
तावन्न सिद्ध्यते दिव्या क्रिया राज्यवती प्रिये॥५॥

श्री देव्युवाच

कीदृशं कौलिकाम्नायं शारीरं योगिनी कुलम्।
क्रिया तु कीदृशी नाथ कथयस्व प्रसादतः॥६॥

अथाम्नायक्रियोपदेशः

एतच्छ्रुत्वा तु देवेन रोमाञ्चित शरीरिणा।
सन्दष्टोष्ठ (पुटं) नाथ स्मृत्वा पञ्चामृतं चरुम्॥७॥

प्रहस्योवाच भगवान् हंसगद्गदया गिरा॥८॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु तत्परमं ज्ञानं संज्ञानं तमनाशनम्।
अनाख्यं कौलिकाम्नायं निर्दहन्तोऽपि मानवाः॥९॥

ज्ञात्वा सिद्धिं प्रयच्छन्ति स्वपिण्डे पारमेश्वरीम्।
बन्धयन्ति ह्यविज्ञाता[1] देव्यस्संसार सागरे।।१०।।

तासां स्थानानि वक्ष्यामि देहस्थां शृणु तेऽनघे।
सप्तकोटचस्तु देवीनां[2] खेचरीणां परं प्रिये।।११।।

तथान्याः पञ्चभिः कोटचो भूचरीणां महाबलाः।
नवभिर्गोचरी कोटचस्सप्तकोटचस्तु दिक्चरी।।१२।।

सदाख्यव्योमोपदेशः

सादाख्यं तु महाव्योम गन्धतन्मात्रकं पदम्।
कपालविवरान्तस्थाः दिव्यदिव्याश्चतुर्विधाः।।१३।।

पञ्चाषड्भिश्च कोटीनां शाकिनीनां महौजसाम्।
पञ्चत्रिंशस्तु वा कोटचश्शुष्काद्यां डाकिनीं पराम्।।१४।।

ईश्वराख्यंव्योम

ईश्वराख्यं महाव्योम रसतन्मात्रकं पदम्।
लीलाद्वारे स्थिता दिव्या लेलिहाना महाबला।।१५।।

विशं कोटचस्तु देवीनां चामुण्डाद्याश्चकाकिनीः।
लाकिनीनां महारौद्रां दशकोटचां महाबलाम्।।१६।।

रौद्रंव्योम

महालक्ष्म्यादिभिर्घोरा रूपतन्मात्रबृंहितम्।
रौद्रस्थानं समागृह्य संस्थिता ग्रसनोत्थिता।।१७।।

पञ्चविंशस्तु ताः कोटचौ विच्चाद्या राकिनीन्तिमाः।
रूपिका कालविच्चाद्या नवकोटचोऽति भीषणाः।।१८।।

---

१. विज्ञात्वा। क.।
२. दिव्यानां। मा. पा.।

वैष्णवं व्योम

वैष्णवं तु महाव्योम स्पर्शतन्मात्र रूपिणम्।
समाश्रित्य स्थिता देव्यो जगद्रूपैकघस्मराः।।१९।

सप्तादशास्तु ताः कोटचो तासां चोच्छुष्कमातृणाम्।
चण्डाद्या - - - - - तथान्यान्ता डामरान्तिमा।।२०।।

ब्राह्मं व्योम

पञ्चपञ्चाशभिः कोटच स्सिद्धिनां योगिनीं पराम्।
ब्राह्मव्योमं समाश्रित्य शब्दतन्मात्रबृंहितम्।।२१।।

खयन्त्रान्ते स्थितास्सर्वा वातचक्रवहास्सदा।
भक्षयन्ति बलाद्वीरान्सदेवासुरमानुषान्।।२२।।

षोडशस्तु महाकोटचस्सिद्धनाथान्सदोदितम्।
सपत्नीकान्परान्नाथान् ज्ञानविज्ञानबृंहितान्।।२३।।

विशुद्धस्थाननिर्देशः

खगेन्द्र कूर्ममीनाद्यान् श्रीमच्छन्दाद्यनुक्रमान्।
विशुद्धस्थानमासाद्य संस्थितास्सर्वदेहिनाम्।।२४।।

अनाहतादिनिर्देशः

तथान्यद्द्वादशः कोटचो अनाहतपदे स्थिता।
दशभिर्मणिपूरान्ते स्वाधिष्ठानगतास्तथा।।२५।।

चतुर्भिः कूर्म निलये आज्ञातत्त्वे भ्रुवान्तरे।
त्रिभिः कोटचस्स्थितास्तत्र महासमयसम्भवाः।।२६।।

त्रयस्त्रिंशस्तु कोटीनां सुराणां रोमकूपगाः।
तत्समासस्वरा भद्रे जानुमध्ये प्रतिष्ठिताः।।२७।।

द्वासप्ततिसहस्त्राणां नाडीनां वीरवन्दिते।
चिच्चक्रं[1] तद्भवं ज्ञेयं जन्माधारमुखं स्मृतम्।।२८।।

नन्दाद्या देवताः प्रोक्ता उपपीठास्सदोदिताः।
तीर्थान्यायतनास्सर्वे कालेऽस्मिन् प्रकटीकृतम्।।२९।।

साधिष्ठानं[1] तु यदूर्ध्वं सप्तभिर्भुवना स्स्मृताः।
तदधो सप्त पातालास्संस्थिता देहपञ्जरे।।३०।।

चुतर्दशविधं सर्गं भूतग्रामं चतुर्विधम्।
शिवाद्या वीचिपर्यन्तं यावत्कालाग्नि गोचरम्।।३१।।

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
एकस्तम्भं नवद्वारं- - - - - - - - - - - - - - -।।३२।।

पञ्चविंशात्मको पेतं शारीरं देवतामयम्।
कं कपाल समोपेतं कञ्चकङ्कालभैरवम्।।३३।।

काद्यं कलामयं देहं कवाटस्तेन सोच्यते।
एवं ज्ञात्वा कुल व द्व्योम कृत्वा युक्तस्तु लीलया।।३४।।

मन्द पुण्योऽपि सुभगे कुले सामान्यतां व्रजेत्।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे अष्टादशः पटलः।।

---

१. ०साधिष्ठाना० ख।

॥ एकोनविंशः पटलः ॥

छिन्नमुण्डारहस्यप्रश्नः

श्री देव्युवाच

गङ्गा यमुनयोर्मध्ये यां चरन्तीं तपस्विनीम्।
संस्थिता तु तपः घोरं न श्रुता सा वद प्रभो॥१॥

कथं सा छिन्नमुण्डा वै सप्तभिः कुलपवर्ततैः।
निःसृतं भक्षते तोयं क्षरन्तं परमं रसम्॥२॥

मध्यदेश प्रयागस्था महाक्षीरार्णवामृतम्।
स्रवते हंसरूपेण अजरश्चामरप्रदम्॥३॥

क्व सा तरङ्गिणी प्रोक्ता किं ते वै कुलपर्वताः।
एतत् प्रश्नस्य वै नाथ निर्णयं कथय प्रभो॥४॥

प्रयाग रहस्यम्

श्री भैरव उवाच

न कदाचिन्मया भद्रे प्रश्नमेतच्छ्रुतं परम्।
अकथ्यं ते प्रवक्ष्यामि शृणुत्वं वामलोचने॥५॥

न मया कस्य चित्ख्यातः प्रयागः मध्यदेशमः।
तत्र सा संस्थिता देवी सोमार्कान्तरवर्तिनी॥६॥

छिन्नमुण्डायाः स्थितिकथनम्

अशिरा हंसिनी नेच्छा छिन्नमुण्डा तदा स्मृता।
गङ्गायमुनमध्यस्था तपोत्कृष्टा तपस्विनी॥७॥

चरते तु तपः घोरं तेजो मुण्डासनेस्थिता।
शुद्धदीपशिखाकारा तरुणादित्यवर्चसा॥८॥

तदा तस्यैष वै संज्ञा छिन्नमुण्डातपस्विनी।
या सा तस्योत्तरा नाडी प्रवाहेन्दुसमप्रभा॥९॥

सुषुम्णा सा तु विख्याता संक्षरदमृतावहा।
या स्थिता दक्षिणे भागे इडा सूर्यायतप्रभा॥१०॥

मन्दाकिनी तु - - - - - - - - - - - - - -।
- - - अभा प्रोक्ता पौर्णमा दक्षिणे स्थिता॥११॥

तयोर्मध्ये तु - - - - नित्योदितं स्मृतम्।
पिङ्गलानाम सा नाडी ख्यातादेवी॥१२॥

यत्तदादि परं धाम चिद्व्योम चित्कलालयम्।
अजस्रोतेति विख्यातमघोरं घोरनाशनम्॥१३॥

काद्यवेश्माष्टकान्तस्थं नवात्माबिन्दुरूपिणम्।
हरस्य मुकुटं नाथं कुलकौलेशभास्करम्॥१४॥

महाव्योम शशाङ्कं वै भैरवं तम नाशनम्[1]॥१५॥

प्रस्थाना प्रवहत्येषा व्योमगङ्गातरङ्गिणी।
प्रस्रवावर्तकल्लोलऊर्मिपातौघवाहिनी॥१६॥

विशुद्धास्यं महासेनं[2] शुद्धजाम्बूनदप्रभम्।
सर्वाधारमयं शम्भुं क्षालयित्वानघेश्वरम्॥१७॥

गतामनाहतं शाक्तं हिमवन्तं महागिरिम्।
गृहीतसरितास्तस्मात्प्रययौ तु हिमाचलम्॥१८॥

सादाख्यं तु नगश्रेष्ठं गृहीतममृतावहा।
सरिदन्यावनिं याता प्रविष्टामन्दिरं गिरिम्॥१९॥

---

१. काद्य इत्यारभ्य तमनाशनमिति - ख मातृकायामेव।
२. ०मेदं०, ख।

ईश्वराख्यं परं तत्त्वं हृत्पद्मावङ्गुलावकम्।
गृहीतं सरितस्तस्मात्प्रययौ निषधं गिरिम्॥२०॥

रौद्रस्थानं परं दिव्यमीश्वराधोर्ध्वमङ्गुलम्।
जग्राह परितस्तस्मात्पारियात्रगिरिं गता॥२१॥

वैष्णवं तु परं धाम रौद्राधोर्ध्वाङ्गुले स्थितम्।
तस्मात्तु सरितश्रेष्ठा गृहीतममृतावहा॥२२॥

गता गिरिवरं दिव्यं महानीलेति विश्रुतम्।
ब्रह्मस्थानवरं दिव्यं वैष्णवात्परतस्स्थितम्॥२३॥

पार्थिवं तां विजानीयादृहीत्वा सरितार्णवम्।
निर्याता ब्रह्मपदवी व्योमगङ्गातरङ्गिणी॥२४॥

गङ्गायमुनसंसर्गे संस्थिता सा महाकुला।
तरङ्गावर्तकल्लोल चलत्तुहिन सङ्कुला॥२५॥

त्रिस्वरूपैकतां याता पराद्धरितभैरवात्।
प्रविलीनान्तरेधाम्नि छिन्नमुण्डामुखान्तरे॥२६॥

त्रिधामान्तरसङ्घट्टे तत्त्वसंहारभैरवे।
सदा पक्षद्वये पूर्णे कामिनीनां रजोवहा॥२७॥

संसारसागरोद्धारसेतुरूपा पराकला।
ज्ञात्वा चोत्तारयस्तस्मादज्ञात्वा बन्धकारिका॥२८॥

संसारोत्तारणी तारा सकृज्ज्ञात्वा तु लीलया।
तद्भावभक्तियुक्तानां वीराणां वीरवन्दिते॥२९॥

सदा तस्यैष्, वै संज्ञा छिन्नमुण्डा तरङ्गिणी।
भक्षयित्वामृतं दिव्यं त्रिधामपुटबृंहितम्॥३०॥

कुलामृतम्

सुपक्वं क्षरते दिव्यमेकपञ्चामृतान्वितम्।
कुलामृतेति विख्यातं महावज्रोदकं रसम्।।३१।।

कुलामृतमाहात्म्यम्

सर्व सौभाग्यजननं सर्वापदनिवर्हणम्।
सर्वदुःख प्रशमनं सर्वदुःख निषूदनम्।।३२।।

सर्वाधिकारफलदं सर्वघोरनिर्वहणम्।
सर्व पापप्रशमनं ग्रहज्वरविषापहम्।।३३।।

अलक्ष्मिनाशनं पुंसामजश्चामरताप्रदम्।
द्वासप्तति सहस्राणां नाडीनां यन्मुखोत्तमम्।।३४।।

तया नाड्या तु सुभगे जीवाख्या अमृतावहा।
प्रविशेत्खेचरे चक्रे षट्कोणे सर्वबृंहिते।।३५।।

सोमार्काग्नि कलान्तस्थे महाक्षीरामृतार्णवे।
वह्निर्विंशान्तरारूढे जीवोऽमयपुरान्तरे।।३६।।

सुगुप्तैर्मातरैर्गुप्तै र्हल्लेखाद्यैर्महाबलैः।
संस्थिता अमृतं तत्र योगिनीनां महोदयम्।।३७।।

गृहीत्वा प्राप्तकालेन मध्यवृत्ति पदोत्थितम्।
एकादश परावर्त मन्त्रान्नेकादशाक्षरे।।३८।।

- - - स्तु मत्सुतोऽसौ न मानुषम्।
मृत्युजिद्वज्रकायश्च क्रमादजरामरो भवेत्।।३९।।

महाबलो महावीरो कामेश्वर इवापरः।
स भवेन्नात्र संदेहस्सत्यं भैरवभाषितम्।।४०।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे एकोनविंशः पटलः।।

।। विंशः पटलः।।

श्री देव्युवाच

सूचितं ते परं मन्त्रं दशैकार्णं महाबलम्।
मूलजं पञ्चरत्नस्य स्वस्वभावमकीलितम्।।१।।

सस्फुटं नोदितं नाथ कथय स्वप्रसादतः।
एतच्छ्रुत्वा परं प्रश्नं भैरवोत्फुल्ललोचनः।।२।।

सन्दष्टोष्ठ पुटं नाथः (स्पृष्ट्वा) पञ्चामृतं चरुम्।
सुरालिपिशितोपेतमुभयानन्दजान्वितम्।।३।।

पीत्वा वरासवं दिव्यं प्रत्यक्षोक्तं च शूलिना।।४।।

श्री भैरव उवाच

न कस्यचिन्मयाख्यातं महाम्नायक्रमान्वितम्।
आद्यं हृदय सर्वस्वं योगिनीनां महोदयम्।।५।।

मूलमुख्यतरं मन्त्रं दिव्यं पञ्चामृतस्य च।
राजराजेश्वरं दीप्तं दशैकार्णमकीलितम्।।६।।

न जानन्ति हि ये वीरा प्राश्यं पञ्चामृतस्य च।
महावज्रोदकस्यापि कुर्वते मूढचेतसः।।७।।

पशवस्तेऽविचारेण सदेवासुरमानुषाः।
वृथा परिश्रमं तेषां पूजाध्यानजपाहुतिम्।।८।।

सदा मण्डलविज्ञानं भवत्येवं निरर्थकम्।
तेषां जन्मजराव्याधिर्दैवीपीडातिदारुणा।।९।।

दारिद्र्यं दुःख संतापं देहे नित्योदितं भवेत्।
- - - - - - - - - तेषां भवति सुव्रते॥१०॥

सप्तकोटि प्रवि(स्तीर्ण) कवाटं योगिनी सुतम्।
त्रिभिः कोट्यस्तु मन्त्राणां तत्तच्छास्त्रार्णवोत्तमे॥११॥

पञ्चरत्न विधानम्

विधानं पञ्चरत्नस्य योगिनीशेश्वरस्य च।
तासां वै मूलजं मन्त्रं राजराजेश्वरं परम्॥१२॥

एकादशाक्षरं दीप्तं भूरिकालानलप्रभम्।
हृदयं सर्वदिवीनां अजरश्चामरप्रदम्॥१३॥

सर्वसौभाग्यजननं सर्वापदनिबर्हणम्।
सर्वामयहरं सत्यं ज्वरग्रहविषा(पहम्)॥१४॥

व्याधि निर्णाशनं घोरमलक्ष्मितम नाशनम्।
दारिद्र्यदुःख शमनं सर्वकाम विभूतिदम्॥१५॥

न मया कस्य चित्ख्यातं सर्वस्वमिव गोपितम्।
सोऽहं तेऽद्य प्रवक्ष्यामि वीराणां सिद्धिमुत्तमम्॥१६॥

व्याधिभक्षेति विख्यातं भैरवं सर्ववृंहितम्।
[1]श्रीयतां तु द्विधा भेदे कर्णान्ते खटिकागमे॥१७॥

बीजोद्धार क्रमः

सर्वगं वह्निमध्यस्थं मायानङ्गकलान्वितम्।
एतच्छाक्तं महाबीजमनाहत पदोत्थितम्॥१८॥

तदेव वह्निमध्यस्थं सर्वगं रुद्रसंस्थितम्।
नादविन्दुकलोपेतं विशुद्धस्थं सदोदितम्॥१९॥

१. श्रीयन्तां, ख.।

कथितं शाम्भवं बीजं न रुद्रो लभते स्फुटम्।
सर्वगं गज वक्त्रस्थं नान्तं षष्ठासने स्थितम्।।२०।।

नादबिन्दुकलोपेतं स्वराधिष्टानपदोदितम्।
ब्रह्मणः कथितं बीजं तृतीयं वैष्णवं श्रृणु।।२१।।

सङ्कोचं तु विकासस्थं ऐन्द्रषष्ठासने स्थितम्।
नादबिन्दु कलोपेतं वैष्णवं बीजमुत्तमम्।।२२।।

मणिपूरान्तरावस्थं हंसदेहं जगद्गुरुम्।
शून्यं वह्निसमारूढं रुद्रं कालाग्निभैरवम्।।२३।।

पादमूलतलाग्रादि सर्वाङ्गे संस्थितं विभुम्।
व्याप्य ब्रह्माण्डमखिलं लोमकूपान्तरोदितम्।।२४।।

तदेववरुणारूढं शून्यं वारासने स्थितम्।
षष्टस्वरसमारूढं नादविन्दुकलान्वितम्।।२५।।

एषोऽसौ ईश्वरस्साक्षाद्घटि[1]कान्तेव्यवस्थितः।
हंसदान्तमारूढं वज्रं रुद्रेणभूषितम्।।२६।।

नादविन्दुकलोपेतं लभते योगिनी सुतम्।
एषस्सदाशिवं बीजं लोलान्ते परमेश्वरम्।।२७।।

- ।
चिदाकाशपदान्तस्थं स्वस्वरूपमनामयम्।।२८।।

महाकूटोपदेशः

वह्निशून्यं तदात्माच धामशून्यान्तमेव च।।
कालं वज्रं च वरुणं वायुरुद्रैकतः स्थितम्।।२९।।

---

१. घण्टिकान्ते, ख.।

नादविन्दुकलोपेतं महाकूटोऽति विश्रुतम्।
नवतत्त्वेश्वरं नाथं द्वादशग्रन्थिमध्यगम्।।३०।।

षोडशाधारनिलयं षडध्वग्रामबृंहितम्।
कमलाष्टकमध्यस्थं भ्रुवान्ते विन्दुरूपिणम्।।३१।।

तारकाख्यं महाबीजं संसारोत्तारणं परम्।
स्मरणात्कर्णमार्गान्ते किम्पुनस्तद्गतेन्द्रिये।।३२।।

सायुज्यमुक्तिदं पुंसां दहेन्नान्येन चान्यथा।
महाव्योमशशाङ्केशं स्वच्छन्दं सर्वबृंहितम्।।३३।।

कथितं भैरवस्साक्षादघोरस्तमनाशनः।
शिवाद्यवीचिपर्यन्तं व्याप्य विश्वं व्यवस्थितम्।।३४।।

- - - - - - परं ब्रह्मस्वरूपिणम्।
परं ब्रह्मबिलाकारं यन्न जानन्ति मोहिताः।।३५।।

वह्निसम्पुटमध्यस्थं जान्तं रुद्रासने स्थितम्।
मायानङ्गकलोपेतं नारुद्रो लभते स्फुटम्।।३६।।

सुषुम्णाद्यं महाबीजं चान्द्रं कालिन्दिकेश्वरम्।
मायावर्तासनारूढं मृतानाममृतप्रदम्।।३७।।

वह्निसम्पुटमध्यस्थं विथान्तमपरं[1] पदम्।
नादबिन्दुकलोपेतं जाद्येन विभूषितम्।।३८।।

गाङ्गेयोऽष्टं[2] परं बीजं प्रवाहे अन्तरस्थितम्।
प्राणं जीवासनारूढं तौ युतं सृष्टिभूषितम्।।३९।।

---

१. विधान्तपरमं०, ख।
२. ०न्धं०, ख.।

क्षीरासवामृतारूढं पुण्यपापान्तरोदितम्।
धामाख्यं पिङ्गलाबीजं दिनरात्रिपदान्तगम्॥४०॥

ऊर्मिकल्लोलधवलं तरङ्गिण्यामृतावहम्।
पञ्चतत्त्वामृताधारं अमृताख्यं सदोदितम्॥४१॥

चिद्व्योममुकुटायातं नादगम्भीरनिःस्वनम्।
व्योमगङ्गासवाधारं जीवास्यममृतप्रदम्॥४२॥

दशैकार्णं मयाख्यातं मन्त्रराट्सर्वबृंहितम्।
कर्णान्ते सम्प्रवक्ष्यामि चिदाधारपदोदितम्॥४३॥

एषोऽसौ कौलिकं गुह्यं मताम्नायक्रमेस्थितम्।
सुदृष्टविग्रहायातं कर्णात्कर्णक्रमागतम्॥४४॥

वक्त्रागमेन देवीनां प्राप्तं गुरुमुखेन स्थितम्।
महापञ्चामृतं मूलं कवाटविवरान्वितम्॥४५॥

एकादशाक्षरं दिव्यं योगिनां तु शम्भरम्।
शरीरं कथितं भद्रे निवासं परमालयम्॥४६॥

सर्वाधिकारफलदं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
त्रिभिस्सर्वास्तु कोटीनां मन्त्राणां काद्यसम्भवम्॥४७॥

राजराजेश्वरी ह्येषा - - - - - - - - ।
दीपकस्सर्वमन्त्राणां जीवात्मा सर्वबृंहितः॥४८॥

अस्यार्थ - - - स्तो वै मन्त्रनाथ महौजसा।
यस्यैषा तिष्ठते देहे स रुद्रो भैरवस्वयम्॥४९॥

मन्त्रास्तु किङ्कुरास्तस्य सचेटपरिवारकाः।
तस्य पाद रजो धूलिं वन्दयन्ति सुरासुराः॥५०॥

वल्लभस्सर्व देवीनां स्त्रीणां कामार्णवोपमः।
रूपेणानङ्गसदृशः द्वितीय इव शङ्करः।।५१।।

अजितस्समरे नित्यं मृत्युजिद्वज्रकायवान्।
वलीपलितनिर्मुक्तो भुक्त्वा भोगासने स्थितः।।५२।।

स्वपिण्डे सिद्ध्यते चार्थः इत्याज्ञा पारमेश्वरी।
कुलकौलेषु ये भक्ता नित्यानां च उपासकाः।।५३।।

मतयामलतन्त्राद्यैश्शाक्तकौलक्रमाद्यकैः।
षड्विधैर्दर्शनवरैश्चतुर्वेदक्रमान्वयैः।।५४।।

उपासन्ते हि ये वीरा पञ्चतत्त्वामृताशिनः।
दशैकार्णेन रहिता जरादारिद्र्य पीडिताः।।५५।।

व्याधिशोकार्णवे मग्ना भुक्तिमुक्ति विवर्जिताः।
वृथापरिश्रमं तेषां नरकेषूपपत्तिषु।।५६।।

रुद्राद्या नात्र सन्देहो किम्पुनर्मानुषा भुवि।
यस्त्वेषं मूलजं मन्त्रं कृत्वापञ्चामृताशनम्।।५७।।

भवते सोऽचिराद्भद्रे ममद्रोहेऽपि[1] सिद्ध्यति।
नान्यथा न भवेत्सिद्धिः - - - - - - - - ।।५८।।

अस्मिन् कौलागमे दिव्ये दिव्यमन्त्रः प्रकाशितः।
हृदयं बृद्धनाथस्य भैरवस्यापि तेजसा।।५९।।

एषा शक्तियुतस्यैव वीरवीरावृतस्य च।
उदयं सर्वमातृणां स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।६०।।

सर्वकामप्रदं सत्यं सर्वस्वं प्रकटीकृतम्।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे विंशः पटलः।।

---

१. ममद्रोहेऽपि, ख.।

॥ एकविंशः पटलः॥

श्री देव्युवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं ज्ञानामृतान्तिमम्।
कस्मिन्काले तु सम्प्राप्ते पिवामि परमामृतम्॥१॥

महापञ्चामृतं दिव्यमजरामरसिद्धिदम्।
मन्त्रयुक्तं ददात्याशु कौलिकं कुलसम्भवम्॥२॥

पञ्चामृतपानविधानम्

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यदुक्तं दिव्यरूपिणा।
न मया कस्यचित्प्रोक्तं सस्फुरं गोपितं सदा॥३॥

प्रियप्रीत्या प्रवक्ष्यामि त्वया गोप्यमिदं सदा।
यत्तत्पञ्चामृतोपेतं षड्रसं परमामृतम्॥४॥

सदा वै सात्त्विकाहारं जीर्णभुक्तो गणाम्बिके।
आदौ वह्निर्विषं पश्चात् त्यक्त्वा पीयूषमुत्तमम्॥५॥

ग्राह्येत्स्व[1]कुलोद्भूतं मध्यवृत्ति पदे स्थितम्।
रसं वज्रामृतं दिव्यं हेमपात्रेऽथ राजते॥६॥

काष्ठे[2] वा बिल्वजे पात्रे अयस्कान्तेऽथ रत्नजे।
सुपीतं मुनिसंख्यामिर्दशैकार्णेन मन्त्रितम्॥७॥

---

१. ०सु. ख.।
२. कांस्ये, ख.।

वली पलित निर्मुक्तो मृत्युजिद्वज्रकायवान्।
- - - - - - मेधावी सर्वशास्त्रार्थवित्कविः॥८॥

रूपेणानङ्गसदृश स्त्रिदशस्येश्वरो भवेत्।
नव नागाङ्गायुतबली चतुर्भिश्चापराजितः॥९॥

पतिभिर्भवती वीरो शायानुग्रहकृत्सदा।
स्वपिण्डे मन्दपुण्योऽपि षण्मासात्सिद्ध्यते ध्रुवम्॥१०॥

इति सत्यं महेशानि प्राप्ते काले यदा सकृत्।
प्रयुक्तं सिद्धिदं प्रोक्तं नात्र कार्या विचारणा॥११॥

अथ भृङ्गिरजोपेतमपराह्ने यदा[1] नघे।
ज्ञात्वासौ सकलाधारं संस्थितं तु सदा प्रभुम्॥१२॥

तत्काले मन्त्रयुक्तस्तु नस्ये पाने पिवेत् प्रिये।
त्रिसप्ताहस्तु निर्विघ्नं मृत्युजिद्वज्रकायवान्॥१३॥

स्ववेश्मन्यपि[2] च पाताले बिलयन्त्राणि भञ्जयेत्।
प्रविश्य भुञ्जते भोगान् कन्यकान् रूपशालिनीन्॥१४॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तदन्ते लीयते शिवे।
परं सत्यं महायोगं रहस्यं प्रकटी कृतम्॥१५॥

गृह्य निर्गच्छते स्वेच्छासिद्धद्रव्याञ्जनादिभिः।
खड्गान्वागुलिकान्वाथ रसं वा पादुकाञ्जनम्॥१६॥

सिद्धविद्याधरपदे चक्रवर्तित्वके भवेत्।
मोहकल्पस्य पर्यन्ते भुक्त्वाभोगान् शिवं व्रजेत्॥१७॥

---

१. यथा० क.।
२. स्ववेश्मिपि, क.। स्ववेश्मेऽपि, ख.। उपरि तु कल्प्य लिखितः पाठः।

अथवा सूर्य चारस्थं ज्ञात्वा प्रवहते प्रभुम्।
सोमराजीरसोपेतमेष स्त्रीपुष्पसंयुतम्।।१८।।

सप्तभिर्मन्त्रितं भद्रे पूर्वाह्णेतु कुलामृतम्।
नस्ये पाने पिवेन्नित्यं - - - - समालभेत्।।१९।।

एकान्ते पूजयेन्नित्यं भैरवं परमेश्वरम्।
त्रिसप्ताहार्धरात्रे तु अष्टोत्तरशतं हुनेत्।।२०।।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - मधु प्लुतम्।
होमान्ते सिद्ध्यते वीरो - - - गन्धान्ते क्षयं व्रजेत्[1]।।२१।।

प्रयाति भैरवी[2] स्थानं खेचरी विवरोत्तमे।
एतत्ते कथितं सत्यं यदुक्तं दिव्यरूपिणा।।२२।।

अपरकौलिकोपदेशः

अथान्यं कौलिकं योगं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।
गृह्य वज्रामृतं पूर्वं सप्तविंशपलानधे।।२३।।

धात्रीफलरसस्यैव पलत्रयसमन्वितम्।
अयस्कान्ते तु वै भाण्डे शालिमध्यान्तरे क्षिपेत्।।२४।।

त्रिसप्ताहोशितं पश्चादुद्धरे द्वीरनायकः।
एकादशाक्षरे मन्त्रे पादमात्राभिमन्त्रितम्।।२५।।

सारमेकं प्रयोक्तव्यं नस्ये पाने पराह्णके।
मृत्युजिद्वज्रकायश्च वलीपलितवर्णितः।।२६।।

कामवद्विचरेद्वीरो दशनागायुतो बली।
अजितस्सभरे नित्यं सदेवासुरमानुषैः।।२७।।

---

१. ०गनान्ते, क.।

२. ०भैरवं०, ख.।

वागेशी भवते साक्षान्महाकल्पायुषस्थितः।
अदृश्यस्सर्वभूतानां द्वितीय इव शङ्करः।।२८।।

विचरेत्पार्थिवे भागे यथा व्योमगतो रविः।
विषाग्निर्विषमैर्घोरैस्शस्त्रास्त्रैर्न स बाध्यते।।२९।।

भुञ्जते विविधा भोगान् सदेवासुर कन्यकान्।
स्वपिण्डे सिद्ध्यते पश्चात् कल्पान्ते वीर वन्दिते।।३०।।

इति सत्यं परं ब्रह्म भैरवस्य वचो यथा ।।३१।।

।। इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे एकविंशतिः पटलः।।

।। द्वाविंशतिः पटलः ।।

राजबती क्रिया जिज्ञासा

ॐ श्री देव्युवाच

कथिंत ते परं गुह्यं अजरश्चामर प्रदम्।
प्रयोगं कौलिकं दिव्यं नास्ति तृप्तिर्ममप्रभो।।१।।

न सत्क्रिया परादीप्ता नाम्ना राजवती शुभा।
न श्रुतावद मे नाथ त्रैलोक्यैश्वर्य सिद्धिदाम्।।२।।

राजवती क्रियोपदेशः

श्री भैरव उवाच

रहस्यं च प्रवक्ष्यामि (सावधानेन तच्छृणु)।
(सर्वदुःखप्रश) मनलक्ष्मी तमनाशनम्।।३।।

सर्वसौभाग्यजननं सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
वमनं विरेचनं कृत्वा पूर्वं योगं समभ्यसेत्।।४।।

अत्यम्ललवणात्युष्णं तीक्ष्णरूक्षविदाहिनम्।
आहारं वर्जयेत्तत्र स्त्रीसंसर्गं विशेषतः।।५।।

एकान्ते निवसेन्नित्यं भास्करकरविवर्जिते।
क्षीरोदन समाहारं गवाज्यं माहिषं पिबेत्।।६।।

जीर्णाहारस्तु मध्याह्ने अपराह्णे तथा शृणु।
गृहीत्वा गन्धकं पीतं क्षीरयुक्तं वरानने।।७।।

तोलकादादि सुभगे सापवृद्ध्या शनैश्शनैः।
भक्षयेन्मासमेकं तु वलीपलितवर्जितः।।८।।

मृत्युजित्काञ्चनं रूपं भवते नात्र संशयः।
नखान्दन्तान्कचांश्चान्यान् द्विमिश्च परिवर्तते[1]।।९।।

त्रिमिर्तैवज्रकायस्तु चतुर्भिः कामवद्भवेत्।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो दशनागायुतं बली।।१०।।

निर्विघ्नः पञ्चभिर्मासैर्बालार्कसदृशं द्युतिः।
शरच्छशाङ्कवदनः भवते साधकेश्वरः।।११।।

षड्भिः कलायुषो सिद्धिर्मन्द पुण्योऽपि सिद्ध्यते।
एवं नित्योदितं कर्म मध्यवृत्तिपदोद्भवम्।।१२।।

गृह्यवज्रामृतं नित्यं त्रिफलाया रसस्थितम्।
सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा दशैकार्णेन सुव्रते।।१३।।

नस्ये पाने पिबेद्वीरः पूर्वाह्ने सततं प्रिये।
प्रत्यूषे सिद्ध्यते सत्यं षण्मासाद्गन्धकं शनैः।।१४।।

महाकल्पायुषं मध्यपाराख्यं जीवितेस्तु सः।
समिद्धो दिव्य तेजश्च कामेश्वर समो भवेत्।।१५।।

त्रीणि चिह्नानि वै तत्र दाता भोक्ता अयाचकाः।
यथा भवन्ति सुश्रोणि तथावक्ष्यामि तत्त्वतः।।१६।।

- - - - - - - - - गन्धकं तेन भावयेत्।
तेन मूलपयोपेतं - - - - - - - - - शुष्कस्तु सप्तधा।।१७।।

शुल्बजास्तु यथा कामं अरण्यैश्चो - - - - श्शुभैः।
[2]पुटपाकान्तरे पक्वं सुवर्णं सिद्धभूषणम्।।१८।।

---

१. पर्रिवर्तयेत् - मा. पा.।
२. पुटपाके नवं पक्वं, ख.।

निर्धूमाङ्गार सदृशं हेमं भवति शोभनम्।
कल्पान्तेऽपि न नश्यन्ते सत्यं भैरवभाषितम्।।१९।।

लेपं द्वयेन तं शुल्वं तारं भवति शोभनम्।
अथवा गन्धकं पीतं ताम्बूलरसभावितम्।।२०।।

मुनिसंख्यादशैकार्णे मन्त्रयित्वा तु सुव्रते।
सप्तलेपान्तरं शुल्वं कृत्वारण्यैश्च चोत्पलैः।।२१।।

पुटपाकेन वै पक्वं काञ्चनं जायते परम्।
सुदीप्तं दिव्यवपुषं भवेज्जाम्बूनदप्रभम्।।२२।।

इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।
एवं ज्ञात्वा भवेत् सिद्धो दाता भोक्ता अयाचकः।।२३।।

एषा सौ कौलिकी दिव्या क्रिया राज्यवती स्मृता।
स्मृत्वा वै भुञ्जते भोगांल्लक्ष्मीस्त्रैलोक्य वृंहिताम्।।२४।।

भुक्त्वा चैव तु कल्पान्ते उत्पतेद्गगनान्तरे।।२५।।

।। इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे द्वाविंशति तमः पटलः।।

॥ त्रयोविंशः पटलः॥

ॐ श्री भैरव उवाच

अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि क्रियां श्रीपारमेश्वरीम्।
सर्वाधिकारफलदामजरांश्चामरप्रदाम्॥१॥

क्रियोपदेशः

प्राप्तकाले तु कर्तव्या सर्वकामविभूतिदा।
गृहीत्वा वज्रसम्भूतमस्रुतं पारमेश्वरम्॥२॥

वह्निविंशान्तरौद्रान्तं सार्धनित्योदितं पलम्।
उषायोगे तु होमान्ते नस्यपाने पिबेद्बुधः॥३॥

आपादतलमूर्धान्तं सर्वाङ्गेषु समालभेत्।
प्रहरार्धे तु शिशिरे - - - - - - - - - -॥४॥

निदाघे चैव मध्याह्ने वर्षासु प्रहरत्रये।
अपराह्ने शरत्काले - - - - - - - - - -॥५॥

- - - - - - - - - - - - - - - - - -वलीपलिवर्जितः।
द्विभिः कामेश्वरप्रख्यः वज्रकायश्च तत्त्रये॥६॥

षण्मासाद्जितस्सो हि नवनागायुतो बली।
वश्याकर्षणविद्वेषं मारणोच्चाटनादिभिः॥७॥

प्रवेशं निर्गमं चैव रूपस्य परिवर्तनम्।
अष्टभिः सिद्ध्यते मन्त्री नवभिश्चाणिमादिकाः॥८॥

सिद्ध्यन्ते सिद्ध्यश्चान्या उत्तमामध्यमाधमाः।
अनेनैव शरीरेण अनेनैव कलेवरे - - - - - - -॥९॥

दिव्यहोमविधिः

पूर्णे संवत्सरे भद्रे उत्पातगगनान्तरे।
अथवा या पराशक्तिश्चाण्डालकुलकन्यका॥१०॥

पीनोत्तुङ्गपयस्विनग्धा अथवा श्वपचोऽन्त्यजा।
सुभगादुर्भगावाथ भग्ननासा रजस्वला॥११॥

पूजयित्वा विधानेन मायाबीजेन सापरा।
खानपानेन विविधैस्तर्पयित्वा यथाविधि॥१२॥

एकान्ते विजने पश्चाद्भूतले शयनेऽपि वा।
बोधयित्वा तु वीरेण इच्छारूपा मनोन्मनी॥१३॥

प्रज्वालयेत्ततः पश्चात्कामतत्त्वाग्निमुत्तमम्।
होमं तु कल्पयेद्दिव्यं कृत्वा मुद्रान्तबन्धनम्॥१४॥

भगं कुण्डं परं चक्षुः स्रुवं लिङ्गं परं पदम्।
सकृत्सकृत्स्पृशेद्देवि नित्यक्लिन्ना कृशोदरी॥१५॥

ज्ञात्वा प्रवर्तितं दिव्यं समयानन्दभैरवम्।
पश्चात्पूर्णाहुतिं दद्यात्तस्मिन् कामहुताशने॥१६॥

चक्रस्थदेवतास्सर्वा हृल्लेखाद्याश्च तर्पयेत्।
तृप्तास्सिद्धिं प्रयच्छन्ति स्वपिण्डे परमेश्वरीम्॥१७॥

ततोऽतिष्ठेत्तु सहसा शक्ति पद्मे स्थितं रसम्।
उभयानन्दजं दिव्यं अमृतं पारमेश्वरम्॥१८॥

गृहीत्वा तत्त्वविद्वीरस्सा च शक्तिः क्षमापयेत्।
श्रीखण्डमलयोपेतं महापंच - - - - - - -॥१९॥

- - - - - - - - - - - - - शब्द तत्त्वाज्य भूषितम्।
एषा - - - - - - वरारोहे वज्रक्षीरेण भावयेत्॥२०॥

पीत शङ्खमये पात्रे गृहीत्वा वीरवन्दिते।
अष्टोत्तरशतावर्ते दशैकार्णेन मन्त्रिते।।२१।।

ललाटे तिलकं कार्यं वामहस्ते अनामिकाम्।
तत्क्षणाद्भवते वीरो मृत्युजिद्वज्रकायवान्।।२२।।

वलीपलितनिर्मुक्तो कामेश्वरसमप्रभः।
क्षोभयेद्युवतीं सर्वां देव्योन्यश्वजां पराम्।।२३।।

स्तम्भयेत्सर्व सैन्यानि सदेवासुरमानुषम्।
जयते समरे सर्वान् शक्ररुद्रपुरोगमान्।।२४।।

कर्मणा मनसा वाचा यां दिशामवलोकयेत्।
तास्सर्वास्साधकेन्द्रस्य वशे तिष्ठन्ति दासवत्।।२५।।

भुक्त्वा स विपुलान्कामान्नधमान्मध्यभोत्तमान।
चर्यते सिद्ध्यते सत्यं स्वपिण्डे नात्र संशयः।।२६।।

लीलया मन्दपुण्योऽपि विद्यते लीलयानधे।
इति सत्यं महाभागे इत्याज्ञापारमेश्वरी।।२७।।

एतद्रहस्यं परमं न ज्ञातं केनचित्स्फुटम्।
हृदयं सर्वदेवीनां पुत्रस्यापि न विश्वसेत्।।२८।।

गोपनान्मन्दपुण्योऽपि सिद्ध्यते लीलयानघे।
अगोप्या रूद्रतुल्योऽपि प्रयाति नरकार्णवे।।२९।।

रहस्यभेदात्सुभगे - - - मृयते नात्र संशयः।
परं सत्यमिदं गुह्यं रक्षयेत्प्राणवत्सदा।।३०।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे त्रयोविंशतितिः पटलः।।

।। चतुर्विंशंतिः पटलः।।

श्री देव्युवाच

अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफला क्रिया।
अद्य मे त्वत्प्रसादेन विग्रहोनिर्मली कृतः।।१।।

अद्याहं कृतकृत्या वै भवामि तववल्लभा।
नास्ति मे तृप्तिरद्यापि अमृतस्य महेश्वर।।२।।

पुनस्तु श्रोतुमिच्छामि वीरचर्यां तु कौलिकीम्।
सूचिता नोदितानाथ कथयस्व सुराधिप।।३।।

यं ज्ञात्वा मन्दपुण्योऽपि सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्।
एतच्छ्रुत्वा पुरा देवं भैरवं विकृताननम् - - - - ।।४।।

स्फूर्जन्महासवोन्मत्तं स्पृष्ट्वा पञ्चामृतं चरुम्।
सन्दष्टौष्ठ पुटं नाथः प्रहस्यवाच शूलिनीम्।।५।।

वीरचर्याविधिः

श्री भैरव उवाच

साधु चोद्यवरं भद्रे दुर्लभं ज्ञानसागरम्।
अकथ्यं कथयिष्यामि यं ज्ञात्वा सिद्ध्यते ध्रुवम्।।६।।

विधानं वीरचर्याख्यं रहस्यं सर्वकामदम्।
गोपितं तु मया पूर्वं स्वच्छन्दे कोटिसम्मते।।७।।

कुल कौलागमैस्सर्वैर्न मयाप्रकटी कृतम्।
अस्मिन्कौलागमे दिव्ये मतार्थे श्रूयतां प्रिये।।८।।

स्वबाह्याभ्यन्तरावस्था वीरचर्या गणाम्बिके।
यावन्न ज्ञायते वीरस्तावत्सिद्धिमतो मया।।९।।

यावन्न ज्ञायते चर्या देहस्थाचितिरव्यया।
परानित्योदितानन्ता ब्रह्मसत्तास्वरूपिणी।।१०।।

क्षेत्राष्टक समोपेता सिद्धाष्टक परीवृता।
अष्टाष्टक गता ह्येषा चक्राष्टकपरीवृता।।११।।

ह्य[1]विज्ञाय बहिर्मूढाः पर्यटन्ति नराधमाः।
ते म्रि[2]यन्ति हि वै नूनं काले श्री पारमेश्वरी।।१२।।

एवं ज्ञात्वां प्रयत्नेन देहस्थानिष्क्रमद्बहिः।
रात्रौ पर्यटमाणं वै भाक्षिताः पशवस्तु ते।।१३।।

कुतस्सिद्धिर्भवेद्येषां - - - - - - - - - - - - ।
- - - - - - - - - - - - सिद्धिराशु प्रवर्तते।।१४।।

नायासेन भवेच्छीघ्रं सत्यं भैरवभाषितम्।
नान्यथा तु स विज्ञाय स्वराह्यभ्यन्तरोदिता।।१५।।

चर्याश्री भैरवस्यापि सिद्धिमुक्तिर्न विद्यते।
एवं ज्ञात्वा विदित्वा तु कुरु कर्म यथेच्छया।।१६।।

एतच्छ्रुत्वा तु वै देव्या प्रहस्योत्फुल्ल लोचना।
सोत्कण्ठालिङ्गितं कण्ठे भैरव्या परमेश्वरम्।।१७।।

सुचिरं तु परिष्वज्य पीत्वा दिव्यं वरासवंम्।
प्रविष्ट वदना सक्ता ज्ञानघूर्णित लोचना।।१८।।

कृताञ्जलि पुटा सक्ता पुनः प्रोवाच भैरवी।।१९।।

---

१. ०ह्य., मा. पा.।
२. मृ० क.।

श्री भैरव्युवाच

भगवन्भूत भव्येश भूतनाथ जगत्पते।
त्वं प्रभुस्सर्व देवीनां सिद्धिशक्तिफलप्रदः।।२०।।

शक्तिं पद्मासनारूढां स्थित्योत्पत्तिलयङ्कराम्।
अष्टाष्टकसमायुक्तां स्वबाह्यभ्यन्तरोदिताम्।।२१।।

मूलमुख्यतरा चर्या सूचिता नोदिता प्रभो।
प्रसादाद्ब्रूहि निश्शेषं संशयं छिन्धि मे प्रभो।।२२।।

श्री भैरव उवाच

शृणुत्वं ज्ञान सर्वस्वं येन ज्ञातं सुरासुरैः।
हृदयं सर्वदेवीनां योगिनीनां महोदयम्।।२३।।

- - - - - - - - - - स्थानाष्टकभूषितम्।।२४।।

तन्मध्ये तु परा देवी कर्णिकान्तान्तरे स्थिता।
शिवेन सह वर्तन्ती शक्तिर्या पारमेश्वरी।।२५।।

वह्निन्द्वास्य[1] मध्यस्थां त्रिधामान्तरवर्तिनी।
जीवसम्पुटमध्योत्था चिदाकाशान्तपायिनी।।२६।।

प्रसुप्तभुजगाकारा तन्तुरूपा मनोन्मनी।
परान्तः पातिनी रौद्राद्विकटाद्ध्वंसरूपिणी।।२७।।

सप्तादशीति परमा कलाकालक्षयङ्करी।
घोरासङ्कर्षिणी देवी श्मशाने - - - - - ।।२८।।

शुद्धदीपशिखाकारा उदयास्तमवर्जिता।
परानित्योदिता ब्रह्मसत्तामात्रस्वरूपिणी।।२९।।

यत्र दह्यन्ति पापानि पञ्चविंशात्मकेन्द्रियाः।
पञ्चब्रह्म शिवाद्घोरात्तत्त्वषट्त्रिंशच्च बालकाः।।३०।।

---

१. ०वित्वास्य०, क.।

अष्टात्रिंशकलाद्रामा चतुर्वर्णक्रमान्वया।
सा चितिः पश्य कायस्था कालानलसमप्रभा॥३१॥

यत्र सर्वमिदं विश्वं भस्मवत्प्रलयङ्गतम्।
शिवाद्यावीचि पर्यन्तं यावत्कालाग्निगोचरम्॥३२॥

यया ग्रासीकृतं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
सा चितिः पश्यकायस्था भूरिकालानलप्रभा॥३३॥

स्थानाष्टाष्टकमध्यस्था समन्तात्परिवेष्टिता।
अप्रयत्ने महापद्मे पूर्वादारभ्य सुव्रते॥३४॥

सा बाह्याभ्यन्तरान्तस्था श्मशानाद्यष्टका शृणु।
अष्टाष्टकं परं दिव्यं यं ज्ञात्वा सिद्ध्यते ध्रुवम्॥३५॥

श्मशानष्टक निर्देशः

आमकृकं तु कङ्कालं कालग्रासं तु लङ्कुटम्।
भीमं शैवाट्टहासं च करवीरं कुरङ्किणम्॥३६॥

अष्टौ ह्येते महाघोराश्श्मशानास्सर्वबृंहिताः।
पूर्वान्ताद्याः परे देव्या भूतवेतालसेविताः॥३७॥

योगिनी वीरवृन्दैस्तु यक्ष रक्षः पिशाचकैः।
सेविता सरतैर्घोरैस्संस्थितास्ते दलाष्टके॥३८॥

क्षेत्राष्टकम्

श्मशान्नास्तु मया ख्याता क्षेत्राश्चैवमतश्शृणु।
प्रयागं वरुणा कोल्ला जयन्ती तु कुरूस्थलम्॥३९॥

देवीकोटं तु कश्मीरा तथा कालञ्जरं प्रिये।
अष्टौ ते क्षेत्रान्तरे संस्था पद्माष्टदलसंस्थिता॥४०॥

पीठाष्टकम्

पीठाष्टौ सम्प्रवक्ष्यामि सबाह्याभ्यन्तरोदिता।
ओड्यानं चोत्तरे पत्रे याम्ये जालन्धरं प्रिये।।४१।।

पूर्वे श्रीकामरूपं वै पूर्णगिर्यस्तु पश्चिमे।
उज्जयिन्या - - - - - - - - - - - - - - -।।४२।।

कान्यकुब्जे तु वायव्यां नैर्ऋत्यां तर - - - -।
पीष्ठाष्टौ कथिता ह्येते सिद्धयोगेश्वरालया - - -।।४३।।

भैरवाष्टककथनम्

भैरवाष्टौ प्रवक्ष्यामि श्रृणुं त्वं वीरवन्दिते।
स्वच्छन्दं स तथानन्दं सकुनं द्वापरं[१] तथा।।४४।।

मेघनादस्तु सोमेशः भोगहस्तस्तु सप्तमः।
कालाग्निभैरवः भद्रे अष्टमः परिकीर्तितः।।४५।।

अष्टौ ते भैरवाः प्रोक्ताः राजराजेश्वरान्तिमः।
दिशाष्टौ तु समाश्रित्य पद्माष्टदलके स्थिताः।।४६।।

वीराष्टककथनम्

वीराष्टौ सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणुत्वं वीरवन्दिते।
अनन्तः क्रन्दनश्चण्डः टङ्कदारी ततोरुणः।।४७।।

परानन्दरघुश्शान्ता इत्यष्टौ वीरनायकाः।
पूर्वादारम्यसुभगे पद्माष्टदलके स्थिताः।।४८।।

राजराजेश्वरा ह्येते वीरवीरेश्वरेऽर्चिताः।
अष्टाभिर्योगिनीमुख्या श्रृणुत्वं कथयामि ते।।४९।।

---

१. संस्थानं द्वापरं तथा। ख.।

योगिन्यष्टककथनम्

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही वज्रिणी चैव ईशाने सप्तमास्थिता॥५०॥

अष्टमा तु महालक्ष्मी जया ह्येताः प्रकीर्तिताः।
परान्तः पातिनी देवी दक्षिणोत्तरसंस्थिता॥५१॥

क्षेत्रपालाष्टककथनम्

अतः परतरं दिव्यं क्षेत्रपालाष्टकं शृणु।
हेरुकं पूर्वपीठे तु आग्नेये त्रिपुरान्तकम्॥५२॥

दक्षिणे ह्यग्निवेतालं अविजिह्वं तु नैर्ऋते।
कालाख्यं वारुणे पीठे वायव्ये तु करालिनम्॥५३॥

उत्तरे ह्येकपादं तु ऐशान्यां भीमरूपिणम्।
एते क्षेत्राधिपा पीठे राजराजेश्वरा स्मृताः॥५४॥

पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्यपि सानताः।
गणेशाद्या स्मृता[1] ह्येते विघ्नकृद्विघ्ननाशकाः॥५५॥

सिद्धाष्टकम्

सिद्धाष्टौ सम्प्रवक्ष्यामि संस्थाने सिद्धिरर्थदम्।
- - - - - शङ्खपादस्तृतीयकम्॥५६॥

नीलकण्ठं खगेन्द्रं च कर्मपादस्तु षष्ठकम्।
मीनमच्छन्दनाथं च सिद्धाष्टौ परिकीर्तिताः॥५७॥

दिशाष्टौ तु समाश्रित्य चित्पद्मदलके स्थिताः।
एतदष्टाष्टकोपेतं परा नित्योदिता कला॥५८॥

शिवेन सह वर्तन्ते आब्रह्मभुवनान्तिकम्।
चरते देहिनां देहे चर्यास्ते परिकीर्तिताः॥५९॥

---

१. ० श्च ता०, क.।

वर्णिता वीरवीरेशैरापादतलमस्तकम्।
स्वबाह्याभ्यन्तरान्तस्थां चरते सर्वबृंहितम्।।६०।।

तदा तस्येष[1] वै संज्ञा वीरचर्या सदोदिता।
स्वस्थानस्थान्तरे ज्ञात्वा विचरेद्यस्तु वै निशि।।६१।।

पीठेक्षेत्रेऽथ गगने तपः क्षेत्रोपपीठके[2]।
महालक्ष्मिवने घोरे यत्र तत्रे[3]च्छया न वा।।६२।।

न भवेत्तस्य वै च्छिद्रं नैव त्रासं सुरार्चितम्।
स्वमखायस्यवीरस्य सिद्धिराशु प्रवर्तते।।६३।।

रात्रौ पर्यटमाणस्य वीरस्य वरवर्णिनी।
अप्रमादाद्भवेत्सिद्धिः प्रमादाच्छाङ्करं पदम्।।६४।।

भवते नात्र संदेहस्सत्यं भैरवभाषितम्।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे चतुर्विंशतिः पटलः।।

---

१. तस्योऽथ० क.।
२. तपः क्षेत्रेऽथ पीठके, क.।
३. ०द्रे. मा. पा.।

।। पञ्चविंशतिः पटलः ।।

श्री देव्युवाच

रात्रौ पर्यटमाणस्य वीरस्य परमेश्वर।
प्रमादः कीदृशः तत्र अप्रमादस्तु कीदृशः।।१।।

वद तत्त्वं सुरश्रेष्ठ येन सिद्ध्यन्ति साधकाः।।२।।

साधक प्रमादवर्णनम्

श्री भैरव उवाच

रहस्यं वीरमातासि[1] दुर्लभं पृच्छितं मया।
योगिनीनां परानन्दसारं संक्षेपतः शृणु।।३।।

गोपितं च मया सर्वं - - - - - - - - ।
यत्र चापि परानन्ता दैव्यो द्वादशधा स्मृताः।।४।।

द्वादशदिव्यलक्षणम्

अदृष्टा या ग्रहायाता रौद्राद्भीमपराक्रमाः।
चतुर्युगविभागेन सिद्धास्तान् सर्वबृंहितान्।।५।।

लिलिहाना महाघोरा हिंसयन्ति महापशुम्।
असन्नद्धस्तु वीरेन्द्रो साक्षादपि पिनाकधृक्।।६।।

ज्ञानसम्पुटमध्यस्थाः स्वस्थानस्थाः परापराः।
दर्शयन्ति हि वीराणां जीवं वै सिद्धिसम्पुटाः।।७।।

भक्षयन्ति हि वीरेन्द्रो पिशितं सप्तजन्मजम्।
योजनायुत लक्ष्येऽपि प्रयान्ति दिव्यचक्षुषा।।८।।

---

१. वीरमाता मे, ख.।

असन्नद्धस्तु वीरेन्द्रो पातयन्ति यथा शृणु।
कौलिकं तु महाम्नायं सङ्केतं पारमेश्वरम्॥९॥

कौलिक महाम्नाय सङ्केतकथनम्

प्रवेशं निर्गमं तासां रहस्यं श्रूयतां प्रिये।
सा इडा तु वरारोहे काले लादस्तथानधे॥१०॥

रावाम्भश्च जगन्माते ऊरेडाजश्च सुव्रते।
डारूपश्च महालक्ष्मि चिद्व्योमेशश्च निर्गमः॥११॥

एतत्सङ्केतकं भद्रे पारम्पर्यक्रमे स्थितम्।
रहस्यं सर्वदेवीनां त्वत्प्रीत्या प्रकटीकृतम्॥१२॥

अकथ्यं कथितं सत्यं सद्यः प्राणहरान्तिमा[1]।
अनेन क्रमयोगेन सदेवासुरमानुषाः॥१३॥

मन्त्रसन्नद्धसाधकस्वरूपम्

भक्षयन्ति बलाद्वीरान् स्ववीर्यबलबृंहितान्।
साधकानामसन्नद्धान् रुद्रतुल्यबलोपमान्॥१४॥

एवं ज्ञात्वा तु वीरेन्द्रो मन्त्र सन्नद्धविग्रहः।
यथेच्छा पर्यटन्रात्रौ च्छिद्रं[2] तस्य न विद्यते॥१५॥

पश्यन्ति देवतास्तस्य विचरन्तस्य शर्वरी।
महालक्ष्मिवने घोरे शशाङ्काङ्कित शेखरः॥१६॥

पञ्चवक्त्रस्त्रिनयनः ज्वालाजटिलविग्रहः।
पादचारी शिवस्साक्षाद्रुद्रः कालाग्निभैरवः॥१७॥

पूज्यते मातरिश्वानस्सिद्धवीरेश्वरेश्वरैः।
वन्द्यमानस्तु चरणैः योगिन्यैस्सर्वबृंहितैः॥१८॥

---

१. ०न्तिमम् क.।
२. छिद्रे, ख.।

इति सत्यं वरारोहे भाषितं दिव्य रूपिणा।
एतस्मात्कारणाद्भद्रे प्रासादाच्छाङ्करं पदम्।।१९।।

प्राप्यते साधक श्रीमान् प्रसादस्तु मयोदितम्।
मन्त्रसन्नद्धदेहस्तु अप्रमादः खमुत्पतेत्।।२०।।

।। इति श्री महाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे पञ्चविंशतिः पटलः।।

॥ षड्विंशः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

यत्त्वया सूचितं सर्वं दिव्यं दिव्ये महाबलाः।
चतुर्युगविभागेन परं सिद्धिमतो मताः॥१॥

किं प्रमाणं तु वै तासां कथं सिद्धा युगे युगे।
एतदाचक्ष्व मे नाथ भवभङ्गहरो हरः॥२॥

श्रीसप्तकोपदेशः

श्री भैरव उवाच

सप्तभिश्च महाकोट्यो अजवक्त्रा द्विनिर्गताः।
निराचारा निराकारा निरानन्दसमुद्भवाः॥३॥

पञ्चभिर्भूचरी कोट्यो नवकोट्यस्तु गोचराः।
सप्तभिर्खेचरी कोट्यो एवमेताश्चतुर्विधाः॥४॥

ज्ञात्वा वै सप्तकं दिव्यं नाम्ना श्रीदूतिडामरम्।
कृतौ सिद्धास्तु वै देव्यो स्ववीर्यबलबृंहिताः॥५॥

पञ्चाषड्भिस्तु ताः कोट्यो शाकिनीनां महाबलाः।
पञ्चत्रिंशस्तु कोटीनांस्तथा वै डाकिनी परा॥६॥

पश्चिमाननसम्भूता परान्तः पातिनीम्बिका।
ज्ञात्वा श्रीसप्तकं दिव्यं नाम्ना श्रीदूतिडामरम्॥७॥

कृतौ सिद्धास्तु वै देव्यो स्ववीर्यबलबृंहिताः।
[1]पञ्चषड्भिस्तु ताः कोट्यो शाकिनीनां महाबलाः॥८॥

---

१. पञ्चषड्भिरिति पदं ख. मातृकायामेव पठितम्।

पञ्चत्रिंशस्तुकोटीनां तथा वै डाकिनीं पराम्।
पश्चिमानन सम्भूता बृद्धान्तः पातिनीम्बिका॥९॥

ज्ञात्वा श्रीसप्तकं दिव्यं नाम्ना भैरवडामरम्।
महात्रेता युगे सिद्धा एता देव्यो महाबलाः॥१०॥

- - - - - - - - लाँकिकोटच्यस्स - - न्तराननां॥११॥

ज्ञात्वा वै सप्तकं दिव्यं नाम्ना श्री सिद्धडामरम्।
द्वापरे ताः महादेव्यो परां सिद्धिमतो गताः॥१२॥

पञ्चविंशस्तु ताः कोटचो राकिनी रौद्रमातारम्।
नवभिः रूपिकां कोटचोः पूर्ववक्त्राद्बभूव ह॥१३॥

सप्तादशस्तु तत्कोटचो डाभ्यां चोच्छुष्कमातराम्।
दक्षिणाननसम्भूता एंता देव्यश्चतुर्विधाः॥१४॥

भविष्यन्ति कुलस्यान्ते चाण्डालकुलकन्यका।
ज्ञात्वा वै सप्तकं दिव्यं नाम्ना श्रीमातृडामरम्॥१५॥

सिद्धिं प्राप्य[1] प्रयत्नेन स्ववीर्यबलबृंहिताम्।
हिंसयन्ति हि वीराणां अज्ञातसिद्धिलम्पटाम्॥१६॥

ज्ञात्वा सिद्धिं प्रयच्छन्ति स्वपिण्डे पारमेश्वरीम्।
इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा॥१७॥

तासां वै मूलजा ह्येका मुद्रापरमदुर्लभा।
नाम्ना वै खेचरी दिव्या सिद्धिमुक्तिफलप्रदा॥१८॥

सान्निध्यकरणीनन्ता पानमुद्रेति विश्रुता।
सर्वाधिकारफलदा सर्वकामविभूतिदा॥१९॥

सकृत्सन्दर्शनात्तस्य दिव्यादिव्यो महाबला।
तृप्ताश्चानन्दितान्तस्था[1] साधकानां वरप्रदा॥
ददन्ति विपुलान् कामान्नधमान्मध्यमोत्तमान्॥२०॥

॥ इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे षड्विंशः पटलः॥

१. 'ष्ठा' मा. पा.।

॥ सप्तविंशः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

यस्तु दिव्य वरैर्दान्तैश्चतुर्भिस्सप्तकोत्तमैः।
चतुर्युग विभागेन दिव्यदिव्या महाबलाः॥१॥

सिद्धिं प्राप्तास्तु वीराणां सदेवासुरमानुषाम्।
कर्षयन्ति बलाज्जीवं पिशिताहारलम्पटम्॥२॥

स्मरेद्येषु मन्त्रेषु देव्यस्त्वाऽननबृंहिताः।
सृजन्ति संहरन्त्येवं लीलया सचराचरम्॥३॥

शिवाद्यावीचिपर्यन्तं तन्त्रार्थं पारमेश्वरम्।
सप्तकोटचो महारौद्रो येनेदं दुःखितं जगत्॥४॥

सप्तकमन्त्रोद्धार कथनम्

श्री भैरव उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि रहस्यं खेचरीमतम्।
सप्तकाख्यं महामन्त्रं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥५॥

वह्निसम्पुटमध्यस्थं द्विजिह्वान्तं सबिन्दुकम्।
मायानादकलोपेतं त्रैलोक्याकृष्टिकारकम्॥६॥

स्वरान्तं द्विस्वरोपितं द्विधाविन्दुकलान्वितम्।
तृतीयं कथितं बीजं कौण्डिली बिन्दुसंस्थितम्॥७॥

कामवेश्म सबिन्दुं च कला बं नाद संयुतम्।
कौण्डलीति पदकं षष्ठं देहं कौण्डालिकाकृतिम्॥८॥

सोमार्कान्तसमोपेतं महाक्रोधासनेस्थितम्।
खेटिकान्ते मया ख्यातं कर्णान्ते च अतश्शृणु॥९॥

अनेन कथितं सर्वमिदं विश्वं चराचरम्॥१०॥

एवं सौसप्तकं दिव्यं मन्त्रेण दूतिडामरम्।
अष्टाविंशस्तु ताः कोट्यो दिव्यादिव्यमहाबलाः॥११॥

खेचरीं भूचरीं चान्यां गोचरीं दिक्चरीं पराम्।
एताः कृतयुगोत्पन्ना दिव्यदिव्या महाबलाः॥१२॥

मन्त्रनाथ प्रसादेन परां सिद्धिमतोगताः।
ईदृशेशं परं मन्त्रं योगिनीनां महोदयम्॥१३॥

स्त्रीणां स्वाभाविकं सिद्धं सर्वकामविभूतिदम्।
पुरुषेणाधिकारोऽत्र अस्मिंस्त्रीविदकर्मणि॥१४॥

वातचक्रं समासाद्य मध्वामुद्रां तु खेचरीम्।
पुष्पविक्षेपहस्तास्ता उत्पतन्ति नभस्तले॥१५॥

अदृष्टं सर्वभूतानां यावद्ब्रह्माण्ड सप्तकम्।
पूर्वेशं निर्गमं चैव रूपस्य परिवर्तकम्॥१६॥

कर्षयन्ति बलाज्जीवं सदेवासुरमानुषम्।
ईदृशं सप्तकं प्रोक्तं सृष्टि संहारकारकम्॥१७॥

- - - - - - - - - - - पिपीलया।
अशोध्याचरणं जायेद्रुद्रस्यापि अधोगतिः॥१८॥

नरकं शाश्वतं घोरं सत्यं भैरवभाषितम्।
दूतीनां सिद्धिदं प्रोक्तं नारुद्रोलभते स्फुटम्॥१९॥

दीप्तकालानलप्रख्यं स्स्फुरन्तमकीलितम्।
प्रथमं कथितं दिव्यं द्वितीयं च अतश्शृणु॥२०॥

---

१. यात०, क.।

द्विकुब्जं वह्निमध्यस्यं मायानङ्गकलान्वितम्।
[1]सङ्करिष्णी पश्चाद्वह्निक्रोधासने स्थितम्॥२१॥

रावाख्यं बिन्दुसंयुक्तं सप्तमं योगिनीप्रियम्।
खटिका तु मयाख्यातं कर्णान्ते च अतश्शृणु॥२२॥

एषोऽसौ कौलिकं दीप्तं नाम्ना भैरवडामरम्।
अनया विविधा देव्यो याकिन्यो डाकिनीस्तथा॥२३॥

पञ्चाशीति तथा कोटचस्स्ववीर्य बलबृंहिताः।
महात्रेता युगे देव्या परा सिद्धिमतो गताः॥२४॥

प्रविश्य चिन्मये चक्रे सदेवासुरमानुषाः।
पूर्वेशं निर्गमं चैव रूपस्य परिवर्तनम्॥२५॥

कर्षयन्ति बलाज्जीवं जीव सम्पुटमध्यगम्।
निग्रहानुग्रहे शक्ता नैव जनन्ति मोहिताः॥२८॥

तृतीयं सम्प्रवक्ष्यामि सप्तकं पारमेश्वरम्।
वह्निसम्पुटमध्यस्थं हान्तं माया सबिन्दुकम्॥२९॥

रावि आविन्दु सम्भिन्नं कलार्थे बिन्दुभूषितम्।
पानुजं च प्रवक्ष्यामि विच्चे शून्यं सतारकम्॥३०॥

मृत्युवेदासनारूढं कर्णान्ते च अतश्शृणु।
एष सौसप्तकं घोरं नाम्ना श्रीसिद्धिडामरम्॥३१॥

अनेन सिद्धायोगिन्यो द्वापरे त्रिंशकोटयः।
स्ववीर्यबलयोगेन काकिन्यो लाकिनीघटाः॥३२॥

अनाहतपदेलीनं सदेवासुरमानुषाः।
भक्षयन्ति बलाज्जीवं जीवाधारपुटस्थितम्॥३३॥

---

१. 'सङ्कर्षिणी' पदं स्यात् साधु इति मे भतिः।

निग्रहानुग्रहस्वेच्छा विचरन्ति चराचरम्।
प्रभावात् स्मरणात्सिद्धिं मन्त्रनाथं सदोदितम्।।३४।।

तवस्नेहान्मया ख्यातं लभते योगिनीसुतः।
चतुर्थं सम्प्रवक्ष्यामि सप्तके मातृडामरे।।३५।।

सप्ताक्षरीविद्या

हरई मन्त्रजीवारिं जीववक्त्रो सतारकम्।
कं खं बीजद्वयं पश्चाच्छिवसूत्रन्तु चास्त्रराट्।।३६।।

खटिकान्ते समुद्दिष्टं कर्णान्ते च अतश्शृणु।।३७।।

एष सप्ताक्षरं मन्त्रं नाम्ना श्रीमातृडामरम्।
अनेन मन्त्रराजेन राकिन्यो रूपिकास्तथा।।३८।।

आद्या डामरिका देव्यो दिव्यरूपाश्चतुर्विद्याः।
द्विभिः कोटि च तानन्ता कोटिमेकाधिका कला।।३९।।

परासिद्धिमनुप्राप्ता दिव्यदिव्यो महाबलाः।
बिन्दुचक्रान्तरारूढा शापानुग्रहकृत्सदा।।४०।।

नानारूपधरा देव्यस्सदेवासुरमानुषाः।
पूर्वेशं निर्गमाकृष्टिरूपस्य परिवर्तनम्।।४१।।

भक्षयन्तिबलाज्जीवं आत्मने सिद्धिमुत्सुका।
पूजितासिद्धिदास्सर्वा हिंसयन्ति सुपूजिताः।।४२।।

प्रभावान्मन्त्रनाथस्य सत्यं नास्ति विशारदे।
एतद्रहस्यं परमं चतुष्कं सप्तकान्तिमम्।।४३।।

शक्तीनां सिद्धिदं प्रोक्तं सर्वकामविभूतिदम्।
स्त्रीमुखे निःक्षिपेत्प्रज्ञा स्त्रीमुखाद् ग्राहयेत्पुनः।।४४।।

लीलया मन्दपुण्योऽपि योगिनीं सततं ब्रजेत्।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे रुद्रस्वच्छन्दे सप्तविंशः पटलः।।

।। अष्टाविंशः पटलः ।।

श्री देव्युवाच

कथं वै मन्त्र सन्नद्धं वीरचर्या समारभेत्।
निशान्ते भैरवं रूपं वीरवीरत्वजां व्रजेत्।।१।।

एतदाख्याहि मे नाथ देवराजेन्दुशेखर।।२।।

श्री भैरव उवाच

सिद्धिकामस्तु वीरेन्द्रो संसारेऽस्मिन्समारभेत्।
मन्त्रसन्नद्ध देहस्य - - - - - - - - - जायते।।३।।

एषा वै तच्छृणु भद्रे अप्रमादस्तु सिद्धिदम्।
गृह्य वज्रामृतं पूर्वं गन्धमाल्यान्नसंयुतम्।।४।।

सप्ताविंश परावर्ते मन्त्रयित्वा समारभेत्।
आपादतलमूर्धान्तं समयाख्या पराकला।।५।।

पूर्वोक्तं तिलकं कार्यं सकृत्समयमन्त्रितम्।
रक्ताम्बरधरं देवं कृष्णश्वेतं च पीतकम्।।६।।

मदिरानन्द चैतन्यं सुतृप्तस्तु मुदान्वितः।
खड्गपाशधरो वाथ मुक्तकेशो दिगम्बर।।७।।

प्रययौ तु निशाकाले पर्वतेऽथ सङ्गमे।
एकलिङ्गे नदीतीरे महापितृवनेऽपि वा।।८।।

अटव्यां सिद्धिनिये क्षोत्रोपक्षेत्रकेऽपि वा।
पीठे पीठमन्देहे महालक्ष्मीवनेऽपि वा।।९।।

गत्वा वै संस्मरेत्कौर[1]मात्मानं शक्तिसंयुतम्।
बृद्धनाथेति ततः पश्चात्संस्मरेत्समयान्तिम्।।१०।।

फट्कार त्रितयमुक्त्वा राव भीमाट्टहासकम्।
बद्धवा श्रीखेचरीं मुद्रां दश दिक्षु विलोकयेत्।।११।।

यत्किञ्च जीवनिलयं वीरो वा तिर्यग्योनिजम्।
तमान्तर्घातयेद् दृष्ट्वा गृहीत्वा तु महासवम्।।१२।।

सोष्णां चैव त्रिरावर्ते समया ख्यातिमर्पितम्।
कृत्वा वै खेचरीं मुद्रां स्मृत्वा[2] वै चामृतासवम्।।१३।।

पीत्वामहासवं वीरो वह्निगर्भास्त्रिभिः प्रिये।
मुक्त्वा वै भीषणं रावं ज्वाला निष्क्रम्यते मुखात्।।१४।।

ततः कलकलाराव वीरवेतालयोगिनी।
हा हा इत्यट्टहासानि छित्किङ्करवाणि च।।१५।।

मुञ्चन्ति शुश्रवे वीरा वीरविग्रह संस्थिताः।
मनसा संस्मरेद्विद्यां समयाख्यां जगाम्बिकाम्।।१६।।

तत्र वै जायते दिव्यं मेलापं पारमेश्वरम्।
पश्यते साधकश्रीमान्दिव्यं महाद्भुतम्।।१७।।

चरणे साधकेन्द्रस्य वन्दयेतामतश्शृणु।
अश्ववक्त्रास्तु खेचर्यो भूचर्यस्तु नराननाः।।१८।।

गोचरी गोमुखास्सर्वाः काकवक्त्राश्च दिक्चरी।
सिंहव्याघ्राननास्सर्वा मार्जारनकुलाननाः।।१९।।

---

१. 'क्रौं' स्यात्।
२. स्मृता - क.।

शाकिन्यो नाम सा ख्याता वीराणां सिद्धि मुक्तिदाः।
उलूकर्क्ष'वक्त्रान्या डाकिन्यो महिषाननाः॥२०॥

श्वानगोमायुवदना गजरासभमूषकैः।
वक्त्रे खगनिभैस्सर्वाः काकिन्यो रौद्रमातरः॥२१॥

अजमेषानजैर्वक्त्रैर्व्यालकच्छपमीनजैः।
वक्त्रैर्नाना विदैर्भीमैर्डाकिन्यो दन्तुरा स्मृताः॥२२॥

लम्भस्तनी प्रलम्भिष्ठा वृद्धा वै चिपिटानना।
शुष्कमांसास्थि शेषा वै राकिन्यस्ता दिगम्बराः॥२३॥

चामरा जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदरा।
रूपिकास्ता समाख्याता वाराहमृगवक्त्रगाः॥२४॥

स्वरूपचारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः।
डाव्या दिगन्तराः प्रोक्ताः ज्ञानविज्ञानबृंहिताः॥२५॥

स्थूल सूक्ष्मैश्च विविधैरूपैर्नानाविधैस्तु याः।
डामरास्तास्तु विज्ञेया हरिवक्त्रास्तु मातरः॥२६॥

काचित्करङ्कहस्ताश्च काचिन्मुण्डकरार्पिताः।
काचिद्वै शवहस्ताश्च पद्मकर्तरिपाणयः॥२७॥

काचित्पिशित हस्ता वै पानघूर्णित लोचनाः।
द्व्यक्षस्त्रिनयनाश्चान्या ऊर्ध्वकेशा भयावहा॥२८॥

एवं नाना विधैरूपैर्दृष्टावीरेण देवताः।
पूजितव्यास्ताथा चान्या हेमपुष्पादिरर्थजैः॥२९॥

महापञ्चामृतो पेतैः कर्मणा मनसा गिरा।
तृण गुल्म लतोद्भूतैर्यथा कालोद्भवोऽपि वा॥३०॥

अलाभात्तु सृतं दिव्यं महापञ्चामृतान्तिमम्।
सोष्णासवमा - - पीत्वा मुखमण्डले।।३१।।

महामुद्रां ततोबद्ध्वा मुनिसङ्ख्यस्तु मन्त्रराट्।
चतुर्भिः सप्तकैः कृत्वा तास्तु देवीन्प्रपूजयेत्।।३२।।

व्यक्ता चैवाथवाऽव्यक्ता तृप्ता सर्वार्थकामदाः।
भवन्ति साधकेन्द्रेण स्वपिण्डे भोगमोक्षदाः।।३३।।

पूजिताः प्रति पूज्यान्ते[1] चक्रे सामान्यतां व्रजेत्।
सम्मुखायस्तु वीरेन्द्रो देहेनान्येन चान्यथा।।३४।।

वीरस्योत्पतमानस्य समन्ताद्यजनायुतम्।
कम्पते पृथिवी सर्वा मूढाश्चाज्ञानिनो जनाः।।३५।।

भूकम्पं प्रविदन्त्येनां नैव जानन्ति मोहिताः।
वीराणां जायते सिद्धिः रुद्रांशो योगिनी सुतः।।३६।।

प्रसादात्समया ख्यातः सत्यं भैरवभाषितम्।।३७।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे अष्टाविंशः पटलः।।

---

१. ०पूजान्ते इति पठेत्।

॥ अथोनत्रिंशः पटलः॥

श्री भैरव उवाच

अथान्येन विधानेन गत्वा पितृवनं शुभम्।
पश्यतेति चितिं घोरं प्रज्वलन्तातिदारुणम्॥१॥

स्मृत्वा समयिनीं दिव्यामेकावर्ते प्रदक्षिणाम्।
उत्तरार्धं प्रकर्तव्यं वह्निगर्भं शिवाष्टकम्॥२॥

अवलोक्यमधश्चोर्ध्वं महामूर्तिमनुस्मरेत्।
गृहीत्वा तं महाकल्पं समयाख्यं सकृत् स्मरेत्॥३॥

एकावर्ते तु मन्त्रिभ्यो भक्षयेद्वामपाणिना।
पलमेकं यथेष्टं वा तत्क्षणात्तु खमुत्वतेत्॥४॥

अनेनैव शरीरेण यावद्ब्रह्माण्डमस्तमकम्।
[1]सञ्चरेसाधकैस्सार्धं प्रयाति परमं पदम्॥५॥

अथैतत् सिञ्चति स्थाने सयवास्तिलतण्डुलान्।
अष्टोत्तरशतं हूयात्कपालान्ते सुरेश्वरम्॥६॥

समयाख्या महाविद्या कपालासन संस्थिता।
पूर्णाहुतिं मूलमन्त्रे उभयोश्शाक्त शाम्भवे॥७॥

त्रिधा प्रथा- - - -श्च त्रिधारावं विमुञ्चयेत्।
कुतो वै शुश्रवेच्छब्दं चितिमध्यामनाहतम्॥८॥

त्रैलोक्यडामरन्नाम्ना हा हा हुं हेति भीषणम्।
किङ्करोस्मीति वीरेशमाभेरं भैरवेश्वरः॥९॥

---

१. कल्पितः पाठः।

एतच्छ्रुत्वा तु वीरेन्द्रो इदं वचनमब्रवीत्॥१०॥

वीरेन्द्र उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे नाथ प्रविश्य हृदयं मम।
एतच्छ्रुत्वा जगन्नाथ विस्फुलिङ्गादिवत्प्रिये ॥११॥

कपालान्ताद्विनिष्क्रम्य प्रविशेद्ब्राह्मरन्ध्रके।
तडिद्वत्साधकेन्द्रस्य भैरवं सर्वबृंहितम्॥१२॥

तत्क्षणात्साधकश्श्रीमान्स्वच्छन्दमिव चापरः।
पञ्चवक्त्रस्तृनयनस्थित्योपत्तिलयङ्करः॥१३॥

अनेनैव शरीरेण उत्पतेद्गगनान्तरम्।
अथ तत्रैव वीरेन्द्रो शूलस्थं पश्यते पशुम्॥१४॥

समयविद्या

पूजयेद्भूतनाथेन बद्ध्वा मुद्रां तु खेचरीम्।
रावद्वयं ततो मुञ्चेदष्टाङ्गैः पिशितोत्तमम्॥१५॥

छित्वा वै प्रापयेद्वीरो मुनिसङ्ख्याभिमन्त्रितम्।
समयाख्या महाविद्या मन्दपुण्योऽपि लीलया॥१६॥

श्रुत्वाशब्दं पराकाशा द्धेरीशङ्करवाकुलम्।
अनेनैव शरीरेण स्मृत्वा समयकौलिनीम्॥१७॥

स्वपिण्डे सिद्ध्यतेऽत्याशु सत्यं भैरवभाषितम्॥१८॥

॥इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे एकोनविंशः पटलः॥

।। त्रिंशः पटलः ।।

ॐ श्री देव्युवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विधानं युग्मभस्मनः।
ज्ञात्वा चैकत्र दग्धं वै युग्मं स्त्रीपुरुषाख्यकम्।।१।।

पूर्ववन्मन्त्रसन्नध एकवीरस्तु साधकः।
दिगम्बरो मुक्तकेशो गच्छेत्पितृवनालयम्।।२।।

त्रिधा प्रदक्षिणं तत्र कृत्वा - - - - - - - - ।
- - - - - - - - - - मुत्तरेण मुखे स्थितः।।३।।

देहं कृत्वा समुत्तानं सं - - - - - - - त्तमाम्।
दक्षिणोत्तानहस्तौ च युग्म भस्मस्य सुव्रते।।४।।

गृह्य - - ष्टद्वयं वीर उत्थितस्सहासानघे।
अवलोक्य दिशां सर्वां हृद्गतां समयां स्मरेत्।।५।।

ऊर्ध्वबाहुं व्रजेन्मौनं उत्तरस्यां दिशि साश्रितः।
अगाधं तु जलं यत्र तत्त्वेषु प्रविशेत्ततः।।६।।

यावन्ति मज्जते सर्वं ऊर्ध्वबाहुं जलप्लुतम्।
कृत्वा वीरेशमात्मानं ततोत्तीर्य जलान्तरात्।।७।।

प्रययौ स्वगृहं पश्चात् संस्मरन्तं पराकलां।
मनसा समयाख्या तु यथेच्छावीरवन्दिते।।८।।

उभौ हस्तोद्भवं भस्म प्रेतवस्त्रे पृथक् पृथक्।
त्यक्त्वा भिन्ने वरारोहे अभिन्नं स्थापयेत् सुधीः।।९।।

वामहस्तोद्भवां धूलिं मुनिसङ्ख्याभिमन्त्रिताम्।
मन्त्रयुग्मेन सुभगे उभयोश्शाक्त शाम्भवे॥१०॥

योत्तमाङ्गात्स्पृशेद्भद्रे स्त्रियो वा पुरुषोऽपि वा।
देवकन्याऽथ गान्धर्वी यक्षिणी वा सुरीपि वा॥११॥

नागकन्याप्सरो वाथ सिद्धविद्याधराङ्गना।
राजा वा राजपत्नी वा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा वशन्नयेत्॥१२॥

शरीरार्थप्रदा सर्वा सदेवासुरयोषिताम्।
ब्रह्माद्यास्तु वशं यान्ति किं पुनर्मानुषो भुवि॥१३॥

इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा।
एष कापालिको[१] वश्य - - मृतमप्य - - मुञ्चति॥१४॥

सव्यहस्तोद्भवां धूलिं सप्तवाराभिमन्त्रिताम्।
उत्तमाङ्गे क्षिपेद्यस्य साक्षादपि शतक्रतुः॥१५॥

सप्ताहान्मृयते सत्यमपिगुप्तं पिनाकिना।
इति सत्यं परं भद्रे नानृतं हरभषितम्॥१६॥

वश्याकर्षणकर्माणि भवन्त्यत्र न संशयः॥१७॥

॥ इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे त्रिंशतितमः पटलः॥

---

१. कापाल्यको, क.।

।। द्वात्रिंशः पटलः।।

श्री देव्युवाच

प्रमादाल्लोपमायान्ति सिद्धिस्[1]समय मण्डले।
साधकस्य भवेद्धानिर्महाविघ्नैः प्रबाध्यते।।१।।

का गतिस्तस्य सर्वज्ञ कथं सिद्धिमवाप्नुयात्।
पतितोऽस्मि महाघोरे संसार गहनार्णवे।।२।।

केनोपायेन तै नाथ मन्दपुण्योऽपि लीलया।
समयत्नश्च वीरेन्द्रः कथं वीरत्वतां व्रजेत्।।३।।

एतच्छ्रुत्वा तु देवेन शिवेनाव्यर्थ शूलिना।
स्पृष्ट्वा पञ्चामृतं भावं सुरालि पिशितान्वितम्।।४।।

संदष्टोष्ठपुटं शम्भुं ज्ञान घूर्णितलोचनम्।
जलप्लुतमिवदेषहं रोमाञ्चितशरीरिणम्।।५।।

सर्वाङ्गैः कम्पितं नाथ पञ्चस्मृत्वा पराकलां।
प्राह गम्भीरया वाचा भैरवं भैरवीप्रियम्।।६।।

श्री भैरव उवाच

रहस्य दुर्लभं दिव्यं कारणं पृच्छितं त्वया।
अकथ्यं परमार्थेन सद्यः प्राणहरान्तिमम्।।७।।

आद्यं हृदय सर्वस्वं योगिनीनां महोदयम्।
मातृणां तु परं प्राणं न ज्ञातं केनचित्स्फुटम्।।८।।

---

१. सिद्धिस् - मा. पा.।

सिद्धानां तु परं पद्मं स्वपिण्डे भोग मोक्षदम्।
सर्वाधिकारफलदं सर्वापदनिबर्हणम्।।९।।

दारिद्रदुःखशमनमलक्ष्मितमनाशनम्।
अ दृष्ट विग्रहायातं पारम्पर्यक्रमोदयम्।।१०।।

हृदयं बृद्धनाथस्य पराशक्तियुतस्य च।
समासात्संप्रवक्ष्यामि शृणुत्वं तद्वरानने।।११।।

समयानां यदा लोपं ज्ञात्वा - - - फलप्रदम्।
कृत्वा समयिनीविद्यां शतार्धैकाधिकां पराम्।।१२।।

त्रिरावर्ते दहेद्रूप स्वस्थानोत्थां कलां स्मरेत्।
जन्म कोट्यर्जितं पापं सर्वं समयलोपजम्।।१३।।

मेरुमन्दिरमात्रापि राशी पापस्य सञ्चिता।
स्मरणान्नाशयेन्नूनं तमस्सूर्योदयो यथा।।१४।।

पितृमातृनिहन्ता च बह्महा गुरुतल्पगः।
सुवर्णस्तेयहारी च व्रतमग्नस्तमूहनः।।१५।।

स्वयं मन्त्रव्रतग्राही लिङ्गोत्पाटस्तु शक्तिहा।
गोघ्नाश्चै व महाद्रोहस्मरणाद्धौतकिल्विषः।।१६।।

अश्वमेधसहस्राणि ब्रह्महत्यायुतानि च।
स्मरणान्नाशयेत्पूर्वं धर्माधर्ममशेषतः।।१७।।

सर्वतीर्थेषु यत् पुण्यं सर्वचारेषुयत् फलम्।
यत् पुण्यं सर्वयज्ञेषु भूरिकोटियुतं प्रिये।।१८।।

सानन्तादिशिवान्तान्तमिदं विश्वं चराचरम्।
सर्वरत्नमयं पूर्णं राहुग्रस्ते दिवाकरे।।१९।।

सकृद्दत्तेन यत्पुण्यं भूरिकोटिगुणं भवेत्।
तत्फलं लभते वीर एकावर्तेन षड्गुणम्।।२०।।

यत्रोत्पन्नमिदं विश्वं प्रबलं यत्र लीयते।
शतकोटिस्तु मन्त्राणामुभयोश्शाक्तशाम्भवम्।।२१।।

बृद्धनाथादिभिः सर्व अष्टत्रिंशाक्षरान्तिमा।
सप्तादशाक्षरास्वाख्या बृद्धकाल्याद्यनुक्रमा।।२२।।

रौद्रोत्पन्नापुनर्यत्र लीयते सर्वबृंहितम्।
ब्रह्म विष्णवेश रुद्राद्यांस्तस्मिन्माने लयोद्भवम्।।२३।।

यया सर्वमिदं हीनं कुलकौलमतन्द्रितम्।
तत्रार्थीनामयज्ञानं चतुर्वेदक्रमान्वयम्।।२४।।

शाक्तं कापालि- - - - संप्रदायं तु शाम्भवम्।
षड् विधं दर्शनाम्नायं मातृमण्डलतर्पणम्।।२५।।

चर्या होम क्रियाजप्यं - - - ध्यानधारण।
निष्फलं व्रजते ज्ञानं क्लेशं जन्मान्तरार्जितम्।।२६।।

यावद्विज्ञाय वीरेन्द्रास्स्वच्छन्दाद्याश्च भैरवाः।
श्रीकण्ठाद्यादिभिस्सिद्धा महालक्ष्म्यादि देवताः।।२७।।

शुष्काद्या मातरश्श्रेष्ठाश्चामुण्डाद्याश्च योगिनी।
रुद्राद्यास्साधका व्यक्तास्सदेवासुरमानुषाः।।२८।।

पशवस्ते समाख्याता भुक्ति मुक्ति विवर्जिताः।
यया विज्ञातमात्रा वै मन्दपुण्योऽपि लीलया।।२९।।

स्वपिण्डे सिद्ध्यतेत्याशु ममद्रोहेऽपि लीलया।
सोऽहं तं सम्प्रवक्ष्यामि कर्णान्ते खटिकागमे।।३०।।

शाक्तं च शाम्भवं बीजं सङ्करिष्णुं तृतीयकम्।
योगेशी च तथा घोरं नारसिंहं त्रयोदशम्।।३१।।

वृद्धबीजं च पुष्कराख्यं महाबीजं महास्त्रराट्।
एषोसौ प्रथमं पातं महादीक्षाफलप्रदम्।।३२।।

सप्तादशाक्षरो घोरं पुण्य पापक्षयङ्करम्।
परापर महादीप्तं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।३३।।

दीक्षाख्यं मूलजं तीव्रं समयाख्यमतश्शृणु।
द्युतिबीजं क्षमं घोरं कालाग्निवज्र- - - मरम्।।३४।।

सन्थानं मातृसन्थानं जीवाख्यं मातृवल्लभम्।
द्वादशारं तु कालाख्यं हंसं हंस प्रियं तथा।।३५।।

अस्त्रं श्रीवृद्धनाथस्य वागीशं सृष्टिकारणम्।
सप्तादशाक्षरोह्येष महापातं द्वितीयकम्।।३६।।

विद्येति विख्याता ताराकाख्या महाबला।
अनेन वे शरीरेण परं ब्रह्मत्व सिद्धिदा।।३७।।

संसारोत्तारण्येत्तार तारारूपा पराकला।
- - - भय विद्येति ख्याता सप्तादशाक्षरा।।३८।।

- - - - - - - - - स्वपिण्डे भोगमोक्षदा।
अपरा समयाख्याता पराश्चैवमतश्शृणु।।३९।।

स्थूला शक्तिः शिवं सूक्ष्मं पापहा हृदंयंपरम्।
ध्रुवं चैव तु निर्जीवं जीवहाबिन्दु भैरवम्।।४०।।

सविसर्गं तु पूयूषंक्षर ईशं शिवं प्रियं।
नारं चैव तु जुं वारिं श्रियाख्यं कामराजकम्।।४१।।

वौषट्कारान्त सहितं पातं सप्तादशाक्षरम्।
मोक्षान्तं तु तृतीयं वै स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।४२।।

एकपिण्डे कृता ह्येषा - - - वैकाक्षराधिकम्।
- - - - - - - - - - - - - - - ।।४३।।

एषामराहताव्यक्ता स्वस्वभावमनामयम्।
अनादिनिधनानन्ता स्वस्थानान्ता सदोदिता।।४४।।

ज्ञानसम्पुटमध्यस्था धर्माधर्मान्तरोदिता।
चिद्रूपा चित्कला शान्ता परासप्तदशापरा।।४५।।

कपालाष्टकमध्यस्था कवाटविवरोदिता।
अजान्तः पातिनी भीमा भयभङ्गभयावहम्।।४६।।

परब्रह्मस्य जननी परापरविभूतिदा।
शतकोटिस्तु मन्त्राणांमुभयोशाक्तशाम्भवाम्।।४७।।

तासां वै जननी ह्येषा तदूर्ध्वे दीपिका स्मृता।
अस्यासनस्थितास्सर्वे मन्त्रास्सर्वत्रबृंहिता।।४८।।

दीक्षाख्या समया ह्येषा भोक्षाख्यास्सर्वसिद्धिदा।
- - - वेद्येति परमा विख्याता पूर्वसिद्धिदा।।४९।।

नानया रहितं किञ्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते।
नानया रहितामन्त्रा न मुद्रा नैव मन्त्रितम्।।५०।।

न विद्यातत्त्व पीठा च योगपीठा न चैव हि।
पञ्चाश - - - - - - - - - - - ।।५१।।

तासां वै मूलजा ह्येषा राजराजेश्वरीन्तिमा।
चतुर्वेदक्रमाह्येषा संस्थिता वीरवन्दिते।।५२।।

अस्याद्यं यत्परं पातं चतुर्था संस्थितं शृणु।
आदिस्थिता तु ये तस्य सप्तवर्णा महाबला।।५३।।

तत्रोत्पन्ना परा सृष्टि आब्रह्मादि शिवान्तकम्।
सृष्टिक्रमं तु तं प्रोक्तं सर्वशास्त्रोद्भवोद्भवम्।।५४।।

तदन्ते यत्स्ववर्णं वै विद्या वा तं द्वितीयकम्।
स्थितिक्रमं तु तं प्रोक्त दिव्यं ते पारमेश्वरम्।।५५।।

तस्यान्ते यत् परं पातं त्रिवर्णं कलिकोत्तमम्।
तत्रोत्पन्नं महारौद्रं संहाराख्यं महाक्रमम्।।५६।।

यत्रोत्पन्ना पराकाली त्रयोदशमहाबला।
सप्तके वा सचारोर्थे चान्द्रे वै सृजते जगत्।।५७।।

सुषुम्णाख्ये वरारोहे लीययास्मरणात् प्रिये।
- - - - - न्द्रे त्रिवर्णे वै सूर्यचारे तु दक्षिणे।।५८।।

इडापे संहरेत्सर्वं शिवाद्यावीचिगोचरम्।
त्रिवर्णे सप्तकस्यान्ते भासारूपे परे - - - -।।५९।।

- - - वह्निचक्रे तु जीवाख्ये पिङ्गलान्ते स्थितिःस्मृता।
- ।।६०।।

ईदृशासापराशक्तिश्चतुर्वर्णा कलान्तिमा।
त्रयोदशविधानन्ता बृद्धवु - - - विश्रुता।।६१।।

सप्तादशीति परमा कालाकालक्षयङ्करी।
- - - - च्छा समुत्पन्ना स्थित्योत्पत्ति लयङ्करी।।६२।।

कालं कालाग्नि - - - - - भैरवं सर्वबृंहितम्।
भूरिब्रह्माण्ड सहितं षडध्व निलयं शिवम्।।६३।।

घोरान्ते कर्षितं यस्माद्यया देव्यास्तुलीलया।
- - - - - - - - शैव संज्ञा परा॥६४॥

- - - - - - - - - - - शिवान्तकम्।
भक्षितं ग्रासमात्रेण तदा सा कालभक्षणम्॥६५॥

कालं जीवमिति ख्यातं सोमार्काग्नि कलान्तगम्।
सर्वमध्यान्तरान्तस्थं तत्त्वगर्भं चराचरम्॥६६॥

धामान्ते भक्षयेद्यस्माज्जीवं जीवपुटान्तगम्।
आत्मासर्वगतं ब्रह्म सकलं निष्फलं अजम्॥६७॥

तत्पुञ्जभरिते चान्ते जीवं जीवान्तकं विभुम्।
यया ग्रासीकृतं चान्ते तथान्तः पातिनी तु सा॥६८॥

संज्ञा भेदे मया ख्याता भैरवी सर्वबृंहिता।
यस्याद्यन्ते परा दीप्ता राजराजेश्वरीन्तिमा॥६९॥

समयान्या समाख्यानं भूतो न भविष्यति।
तत्पदं कथितं तुभ्यं न चैवान्यस्य कस्यचित्॥७०॥

यस्येषा तिष्ठते देहे समुद्रो भैरवस्स्वयम्।
तस्य पादारविन्दं - - - - वन्दयन्ति सुरासुराः॥७१॥

मन्त्रास्तु किङ्कुरास्तस्य स चेटपरिवारकाः।
संज्ञया सृष्टिसंहारं कुरुते लीलया प्रिये॥७२॥

यत्रासौ वसते वीरस्समन्तात्पञ्च योजनम्।
क्षेत्रं तं मोक्षदं प्रोक्तं शिव - - - सम प्रभम्॥७३॥

दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य मुच्यते भवबन्धनात्।
ये - - - - - को जातस्तस्य मुक्तिर्न दूरतः॥७४॥

येन सिद्धावतारस्तु - - - - श्रीकुलोद्भवः।
यस्य ना पश्चिमं जन्म स्वयं वा येन भैरवाः।।७५।।

- - - - येन देहेन पिण्डसिद्धिर्न जायते।
नासौ प्राप्नोति परमां - - - - - ।।७६।।

- - - - - - - - - - - - - - - - - ।
- - - - - - - - - - - - वीर्यवान् ।।७७।।

अजितश्चामरो नित्यं जायते स सुरासुरम्।
वल्लभस्सर्व देवीनां कामेश्वर समो भवेत्।।७८।।

भुक्त्वा विपुलान् भोगान् विश्वेश्वर्य महत्पदम्।
अनेनैव शरीरेण अनेनैव कलेवरे।।७९।।

सप्तभिर्वत्सरैः पूर्णैर्मन्दपुण्योऽपि लीलया।
स्वपिण्डे सिद्ध्यते सत्यं चर्यान्ते वीरवन्दिते।।८०।।

पूजान्ते वा वरारोहे ससद्देहेऽपि नान्यथा।
यद्यपि देवदेवेशं साक्षात्स्वच्छन्दभैरवम्।।८१।।

जिह्वाशतसहस्रेण कोटिकोटिमुखेन वा।
अपि कल्पायुतेनापि प्रभावं चास्य वर्णितम्।।८२।।

ईदृशं तत्पदं दिव्यं त्वत्प्रीत्या प्रकटीकृतम्।
आद्यं हृदय सर्वस्वं सर्वकामविभूतिदम्।।८३।।

गोपनीयं प्रयत्नेन यदिच्छेत्सिद्धिमात्मनि।
दृढभक्तस्य वीरस्य अभिषिक्तस्य सुव्रते।।८४।।

सशिष्यस्यात्मतुल्यस्य यस्य देशं तु जायते।
द्वादशैव तु वर्षाणि शिष्यं वेति परीक्षयेत्।।८५।।

परीक्षानवमुत्तीर्णे शिष्ये जा - - - - द प्रये।
शुभे मुहूर्ते दिवसे एकपात्रे प्रदापयेत्॥८६॥

गुरुनामात्मविदानन्दे शिष्ये चैव प्रतिग्रहे।
ग्राहयेत्तु पराविद्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥८७॥

नान्यथा यः प्रयच्छेत स मूढो नरकं व्रजेत्।
गृहीत्वा च ततो भद्रे सत्यं भैरव भाषितम्॥८८॥

॥इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे त्रयस्त्रिंशतितमः पटलः॥

॥ चतुस्त्रिंशः पटलः ॥

श्री देव्युवाच

भगवन्योगिनीनाथ विद्या - - - दृशम्।
केना प्रतिग्रहं प्रोक्तं - - - - - ॥१॥

- - - - - पद्यपात्रस्य प्रतिपादनात्।
एतत्प्रसादान्निखिलं बूहि तथ्यं सुरमर्चितम्॥२॥

श्री भैरव उवाच

साधु चोद्यवरं भद्रे संसारोत्तारणं कृतम्।
कथयामि यथा तथ्यं यदुक्तं दिव्यरूपिणा॥३॥

भयाल्लोभाथवास्नेहा यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
सप्ताहान्मृयते सत्यं रुद्रतुल्योपि सुव्रते॥४॥

पच्यते नरके घोरे महारौरवगह्वरे।
मुक्तिर्न विद्यते तस्य सादाख्यं कल्पमुत्तमम्॥५॥

गृहीत्वा मन्दपुण्योऽपि धर्माधर्मै र्विशुद्ध्यते।
प्राप्यते परमं स्थानं स्वपिण्डे शंकरं पदम्॥६॥

एवं ज्ञात्वा वरारोहे पात्रेभ्यो विनिवेदयेत्।
स्व शिष्ये आत्म-तुल्ये - - - तु यथा वक्ष्यामि ते शृणु॥७॥

अभिषेक विधिः

शुभे मुहूर्ते दिवसे उभयोः गुरुशिष्ययोः।
स्नात्वा राजोपचारेण सुगन्ध स्वर्णगुलिकादिभिः॥८॥

पूर्वोक्तं दीक्षितं शिष्यं गुरुवत् पूर्ववत् प्रिये।
आपादतलमूर्धान्तं दिव्यगन्धानुलेपितम्।।९।।

मदिरानन्दचैतन्यं सुधूपितसुपुष्पितम्।
गुरुणा पूजितं दिव्यं पूर्वोक्तं कौलिकं क्रमम्।।१०।।

तत्पार्श्वे पूजयेत्कुम्भं गन्धतोयप्रपूरितम्।
कलशं हेमजं रौप्यं रत्नजं मृण्मयं पिवा।।११।।

मूलमन्त्रेशयुग्मेन उभयोश्शाक्तमाम्भवे।
ततश्शिष्यं समाहूय दिव्यरूपस्सुतेजसः।।१२।।

उपविश्यासने दिव्यं पञ्चस्वस्ति कमण्डले।
धारानिर्घोष पातेन मूलमन्त्रेण पार्वति।।१३।।

सप्तावर्तप्रयोगेण शिष्यं मूर्धाभ्यसेचयेत्।
तत्क्षणात्साधकश्श्रीमान्दिव्यतेजो महाबलः।।१४।।

सर्वाधिकारी भवति स्वच्छस्वच्छन्दरूपधृक्।
ततः प्रविश्यवीरेन्द्रो दण्डवद्गुरुपादुकाम्।।१५।।

पूर्वोक्तं पूजयेत्पश्चात् क्रमं श्रीपारमेश्वरम्।
ततो विधारुहस्सो हि भवते वीरवन्दिते।।१६।।

पश्चात्प्रदीयते विद्यां गुरुणा वदश्रीयताम्।
गृहीत्वा सव्य हस्तेन इदं मन्त्रपदैश्चरेत्।।१७।।

ह्रीं हूं क्ष विद्यां चैव ददाति मे।
एवमुक्त्वा तु मन्त्रेण गुरुः शिष्यस्य दापयेत्।।१८।।

- - - वै ग्राहयेद्विद्यां हस्तयोरुभयोः प्रिये।
गृहीत्वा वादयेच्छिष्यमिदं मन्त्रप्रतिग्रहम्।।१९।।

ह्रीं ह्रूं फ्रैं च तथा विद्यां प्रतिगृह्णाम्यहं प्रभो।
यदुक्तं दिव्यरूपेण तत्सर्वं ते फलं भवेत्।।२०।।

एवं प्रतिग्रहं मन्त्रं त्रिधा जप्य गुरोग्रतः।
प्रसादीकृत्य शिष्येण दण्ड पातं तु कारयेत्।।२१।।

गुरुदक्षिणा विधानम्

ततो त्तिष्ठेन सहसा भक्तिमुक्तेन तेजसा।
अजचर्यमिते घृष्टे प्रस्थं तिलसुवर्णकम्।।२२।।

मणिरत्नसमोपातं गुरुपादं तु दापयेत्।
सर्वं तं शिष्यजं पापं जन्मकोट्ययुतान्वितम्।।२३।।

प्रदेशो देशिकेन्द्रेण देहान्ते नात्र संशयः।
गृहीत्वा दैशिकेन्द्रेण घोरं कृष्णाजिनं परम्।।२४।।

अष्टोत्तरशतावर्तं स्वस्थानोत्थं तु कौलिकम्।
समयाख्यां जपं कुर्यात्तक्षणाद्धौत किल्बिषम्।।२५।।

भवते नान्यथाभद्रे रुद्रतुल्योऽपि देशिकः।
सप्ताहा मृयते सत्यं इत्याज्ञापारमेश्वरी।।२६।।

अनेन क्रमयोगेन गृह्य - - - यथा विधि।
स्व गुरुं दक्षयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यं विवर्जितम्।।२७।।

- - - - भद्रे भूगोवस्त्र सुवर्णकम्।
हस्त्यश्व रथराज्यं वै शरीरे पुत्र दारकम्।।२८।।

दत्वाविमुच्यते घोरे येन यत्तुष्यते गुरुम्।
अनेन विधिना भद्रे कर्मणा मनसागिरा।।२९।।

ग्राह्येषा परा विद्या दातव्या गुरुणानघे।
उभौ दातौ गृहीत्वा च अनन्त फलमश्नुते।।३०।।

अनेनैव शरीरेण अनेनैव कलेवरम्।
व्रजन्ति परमां सिद्धिं उभयोर्गुरुशिष्ययोः।।३१।।

सत्यं नास्त्यत्र सन्देहो स्वपिण्डे परमेश्वरम्।
समयाख्या प्रसादेन लीलया नात्र संशयः।।३२।।

सानन्तादि शिवान्तान्ते यावदव्यक्तगोचरे।
रुद्राद्यादेव पश्यामि यस्त्वेदं पूजयेत्क्रमात्।।३३।।

यथोक्त शक्ति विधिना किं पुनर्मानवा भुवि।
यत्र कालाग्नि रुद्राद्याः पशवः वा परिकल्पिताः।।३४।।

तदासर्वप्रयत्नेन पूजा वै सततं प्रिये।
त्रिरावर्ते स्मरेद्विद्यां परासमयकौलिनीम्।।३५।।

विदेशे विगतद्रव्ये अकाले वाति दारुणे।
ययानुस्मृतमात्राद्वै नित्यमेवं दिने दिने।।३६।।

दशकोटिस्तु पूजानां दिव्यां सकलनिष्कलाम्।
सप्ताविंशति - - - - कृत्वा यान्ति न चान्यथा।।३७।।

स रु - - - स्मृत मन्त्रेशा सततं नात्र संशयः।
तुष्यन्ति देवतास्सर्वा योगिन्यो द्दिष्टविग्रहाः।।३८।।

ददन्ति विपुला (न्का) मानधयान्मध्यमोत्तमान्।
सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं भूयस्सत्यं पुनः पुनः।।३९।।

रहस्यभेतत्कथितं न ज्ञातं केनचित्स्फुटम्।
किम - - - - भद्रे नास्ति ज्ञान मतः परम।।४०।।

।। इति श्रीमहाकौलागमे वृद्धस्वच्छन्दे चतुस्त्रिंशतितमः पटलः।।

॥ पञ्चत्रिंशः पटलः॥

पूर्वज्ञान विधिः

ॐ श्री देव्युवाच

भगवन्देवदेवेश सद्यः प्रत्ययसिद्धिदम्।
जीवितं चरणं नाथ कालज्ञानं न ये श्रुतम्॥१॥

पशूनां प्रत्ययार्थाय वद तथ्येन ये प्रभो।

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यदुक्तं दिव्यरूपिणा।
जीवितं मरणं चैव यथा ज्ञायन्ति मानवाः॥३॥

पिष्टगोधूमजा सूक्ष्मा कृत्वा वै दीपभाजनाः।
तिलतैलं - - - - मं तेषां कल्पयेद्वीर वन्दिते॥४॥

सितासितावुभौ तासां समा - - - - र्ती प्रकल्पयेत्।
ह्रीं तै जूं सः चतुर्वर्णै स्थण्डिले परमेश्वरम्॥५॥

पूजयित्वा तु तस्याग्ने सप्तावर्तेन सुव्रते।
अभिमन्त्र्य ततो पश्चाद्दीपं प्रज्वालयेद्बुधः॥६॥

ममत्वेन वरारोहे एकान्ते विजने शुभे।
अमृसवर्तिस्थितं जीवं अमि(अमृता)मृत्युरुच्यते॥७॥

य - - - - व्रजते मृत्युं ज्ञानाख्यं तिष्ठते चिरम्।
तदा सौ चिर - - - - भवति नान्यथा॥८॥

यदादौ व्रजते जीवं मृत्यु दीप्तं - - -।
तदा मृत्युर्विजानीयात्त्रिमिर्मासान्तरो भवेत्।।९।।

ममत्वे - - - - व्रजन्ति परमं पदम्।
- - - - - - - - - - - - - - ।।१०।।

स नराश्चिरमायुष्यं जीव - - - - शं शतम्।
एवं ज्ञात्वा वरारोहे पूर्वोक्तं कौलिकं पदम्।।११।।

योगाभ्यासं प्रकर्तव्यं येन कल्पायुषो भवेत्।
- - - - तिष्ठते साधको यथा।।१२।।

देवतानां तु का - - - - तद्भवन्ति महोत्कटा।
तासां तु कामना श्छिद्रं श्छिद्रांचैव अकामना।।१३।।

अत्रोपायवरं दिव्यं वदाशु त्रिपुरान्तक।।१४।।

श्री भैरव उवाच

इच्छारूपा तु योगिन्यो ग्रसन्ति स चराचरम्।
रुद्राद्यापि वीरेन्द्रं किं पुनर्मानुषं भुवि।।१५।।

सकृज्ज्ञात्वा तु वै तासां कामेच्छा तु समुद्भवा।
ह - - मेलापकं नाथ कर्तव्यं साधकेच्छया।।१६।।

यासां मध्ये स्थिता विद्या दश सप्ताक्षरां पराम्।
तस्यां वै पूर्वजं पात सकृत्स्मृत्वा दशाक्षराम्।।१७।।

जीवसम्पुटमध्योत्थं तैस्सार्धं साधकेश्वरम्।
यथेच्छा क्रीडते तासां स हु तुल कौलजम्।।१८।।

पीठं संयोगजं वाथ शुष्काद्यां मातरं पराम्।
छिद्रं न जायते यत्र पश्यते भैरवे वपुः।।१९।।

वशगस्सिद्धिदास्तस्या योगिन्यो योगबृंहिताः।
पश्यन्ति साधकेन्द्राणामित्याज्ञा पारमेश्वरी॥२०॥

एतद्रहस्य परमं जातं श्री पारमेश्वरम्।
शिवलोकेति विख्यातं वृद्धस्वच्छन्द भैरवम्॥२१॥

ग्रन्थ प्रभाववर्णनम्

नाम्ना श्रीव्याधिभक्षं वै सर्वव्याधिनिकृन्तनम्।
- - - - द सूत्रादि सुभगं अध्वानं याव सुव्रते॥२२॥

सहस्रं कथितं - - - - ज्ञानविज्ञान सागरम्।
कवाटं निशिसंचारं समयाचारमेव च॥२३॥

कालज्ञानं महाक्रीडा षड्भिरेवं शताः प्रिये।
- - - - - विस्तीर्णं स्वच्छन्दं सर्वबृंहितम्॥२४॥

सारं निष्कृष्य योगेन दध्नो धृतमिवोद्धृतम्।
सर्वसौभाग्य जननं सर्वापदनिवर्हणम्॥२५॥

सर्वाधिकार फलदं सस्फुरन्तमकीलितम्।
सर्वकामप्रदं दिव्यं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्॥२६॥

निश्चरेत्तु विना युक्त्या बहुमध्ये कदाचन।
पूजयित्वा विधानेन पुष्पधूपासवादिकैः॥२७॥

नैवेद्यं विविधाथैकारैः कर्मणा मनसा गिरा।
कुलाचार प्रयोगेन वन्दयित्वा तु वाचयेत्॥२८॥

एकान्ते विजने स्थाने ततस्सिद्धिमवाप्नुयात्।
प्राणवद्गोपयेद्यत् सर्वस्वमिव रक्षयेत्॥२९॥

गोपनात् सिद्ध्यतेत्याशु अगोप्यो नरकं व्रजेत्।
यस्त्वेदं कर्षयेज्ज्ञानं यस्याद सचर्या भवेत्॥३०॥

स पूज्यस्स च वै बन्धः यस्तवैतास्सुरार्चिते।
तस्य पादरजोधूलिस्पर्शनात् सौ - - - द्भुतम्।।३१।।

तस्यात्मा पुत्रदाराश्च ताभ्यां श्रीपुष्कलां धनम्।
दत्वा - - - - मुच्यते वीरस्य हःस्वयमेवाहम्।।३२।।

यावन्न भवते रुद्रो - - - - न्न मोक्षभाजनः।
यस्य नानेन देहेन यावन्मुक्तिर्न विद्यते।।३३।।

नासौ प्राप्नोति परमं महाकौलं तु शाम्भवम्।
यत्तदा - - - - रं नाथं वृद्धस्वच्छन्दभैरवम्।।३४।।

तेनार्थं तु परादेव्या - - - - नीन्तिमाम्।
तत्सकाशा मुखं चर्यौ क्रमादद्वादश - - -।।३५।।

- - - - योगिन्यश्च ततो दध्वं प्राणं मन्त्रान सन्तानभैरवम्।
- - - - - - - - - - - थः प्रकाशितम्।।३६।।

त्वत्सकाशात्तु श्रीकण्ठेः श्रीकण्ठा - - - - शिवम्।
सदाशिवास्तुभद्रेण महाकालाग्नि भैरवम्।।३७।।

ततः खगेन्द्र पादैश्च कूर्मभेदो दिनुक्रमैः।
तत्सकाशास्तु सम्प्राप्तं श्रीमच्छन्देन भैरवि।।३८।।

येनावतारितं दिव्यं श्रीक्षेत्रे कामरूपके।
ततो वै सर्वपीठानां योगिनीनां गृहे गृहे।।३९।।

पारम्पर्यक्रमेणैव रुद्रांशैर्योगिनी सुतैः।
सम्प्राप्तं कौलनादिव्यं स्वपिण्डे भोगमोक्षदम्।।४०।।

लिखितं तिष्ठते यत्र तत्र लक्ष्मी प्रवर्तते।
न विषं क्रमते यत्र नाग्निर्विद्युद्भयं भवेत्।।४१।।

हिंसकानेव हिंसन्ति विद्रवन्ति दिशि दश।
तत्र सन्निहिता देव्याश्चक्रारूढा सदोदिताः॥४२॥

भवन्ति साधकेन्द्राणां सर्वकाम विभूतिदाः।
इति सत्यं महाभागे भाषितं दिव्यरूपिणा॥४३॥

॥ इति श्रीमहाकौलागमे पातालपिङ्गलामते षड्विंश सहस्रसंहितायां-
-द्वादशसहस्रान्तखण्डविनिर्गते श्रीकामरूपावतारे सर्व - - - विनिर्णये वृद्धस्वच्छन्दे
कौलविधाने व्याधिभक्षभैरवे पञ्चत्रिंशत्तमः पटलः॥
॥ समाप्त मिति शुभम्॥

॥ सं. ५० चैत्र वति पञ्चम्यां परे भट्टलक्ष्मणलिख्य शुभायास्तु॥